पाँच सरस एकाङ्की

लेखक

मामा वरेरकर

अनुवादक :

रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे

प्रकाशक : लोक-चेतना-प्रकाशन, जबलपुर

मुद्रक : केसरवानी प्रेस, प्रयाग

आवरण—शिल्पी : एम० इस्माइल

प्रथम संस्करण : मार्च, १६६१ : १००० प्रतियाँ

मूल्य : चार रुपये

क्रम

१

पुनश्च गोकुलम् !

[बचपन में मैंने "हरिवश" पुराण की एक हस्तलिखित पोथी देखी थी। प्रस्तुत कथा-वस्तु उसमे थी, ऐसा मुझे स्मरण है । पर किसी भी छपी हुई "हरिवंश" की पोथी मे यह कथा नही है। फिर भी यह घटना बिलकुल असभव नहीं मालूम होती। ऐसा हम नही कह सकते कि कृष्ण वृद्धावस्था मे अपनी मातृभूमि को देखने न आये हो। मैंने यह एकाकी पुरानी पद्धति से लिखा है । इसमे नये लेखको को, जिसे तन्त्र आदि कहते है, वह कुछ न मिलेगा। मैंने इसे केवल अपने मनोरजन के लिये लिखा है। मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि नव-नाट्य के निर्माता पढते समय इस एकाकी के पन्ने उलटकर आगे••• ।]

[**स्थान**—चरागाह से गायो के रँभाने की आवाज सुनायी पडती है। कुछ ग्वाले गायो को हाँकने के लिए दौडते हुये जा रहे हैं। उनमें

से कुछ जो नौजवान है, आराम से चले आ रहे है। रुककर देखते हैं। उनमे से एक बोलता है।]

एक : अरे यार ठहरो भी। जाने दो उन्हें। हमारी गायो को तो आदत है—वे खुद चली जायेंगी अपने-अपने घर। पहले इधर आओ। एक महत्वपूर्ण समाचार मिला है, उसके बारे मे थोडी बातें करें।

दूसरा : कौन-सा महत्वपूर्ण समाचार है जी? तुम्हें तो सभी समाचार महत्वपूर्ण मालूम होते हैं। कोई भी कहीं से आकर तुमसे कुछ कह देता है और फिर उस समाचार को घर-घर कहते हुये तुम गाँव में चक्कर काटते रहते हो। यह तो तुम्हारा जैसे धंधा ही हो गया है। शहर के अन्देशे तुम क्यों व्यर्थ दूबरे होते हो?

एक : अभी जो भारतीय युद्ध हो रहा था न—वह अब समाप्त हो गया। यह तो जानते हो न?

दूसरा : हाँ, जानता हूँ। युद्ध समाप्त हो गया, हजारो-लाखों मनुष्य मरे, उन्हे जलाया, उनकी राख की ढेरी कर दी और सुनता हूँ कि उस राख के सिंहासन पर धर्मराज बैठे है। गनीमत यह कि हमे उस युद्ध की आँच नही लगी।

एक : अरे भई, इसे तो अपना सौभाग्य ही समझो। सुनता हूँ उस युद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेना लड रही थी—

दूसरा . यह अक्षौहिणी क्या बला है भई ?

एक · न जाने क्या है ? होगी कोई बहुत बडी संख्या—करोड, अरब खरब, जैसी ही। पर कहते है कि इस युद्ध में असंख्य आदमी काम आये ।

दूसरा . भगवान जाने इतने आदमी व्यर्थ क्यों मार डाले गये ? कहते है ·कि अपने इस गोकुल में किसी समय नन्द नाम के एक राजा थे। उन्होंने एक लडका पाला था। वही लडका जिसका नाम कृष्ण था आगे चलकर मथुरा का राजा बना—

एक नहीं कृष्ण मथुरा का राजा नहीं बना । किसी भी राज्य का राजा नही हुआ वह। उसने द्वारका नाम की एक नगरी समुद्र में बसाई थी और उसका राजा बना दिया था अपने बडे भाई को—

दूसरा . सुनता हूँ कि वही कृष्ण इस भारतीय युद्ध में भी था ?

एक · उसे इस युद्ध में जाने की क्या जरूरत ? कौरवों और पॉडवों से उसका क्या वास्ता ?

दूसरा . वही तो मै कहता हूँ। कोई आकर कुछ भी बक देते हैं ·और हमारे गाँव के बूढ़े उसे सच मान लेते है। उन्हें वडा अभिमान है न उस कृष्ण पर ! अगर कृष्ण इस युद्ध मे होता तो उसे कोई-न-कोई अधिकार अवश्य ही मिलता। तुम्ही बताओ, मिलता कि नहीं ?

तीसरा वही तो मै भी कहता हूँ। मुझे तो भई, यह सच

नही लगता'। लडाई कौरवो और पाँडवों में हुई। पर उस लडाई मे कृष्ण का नाम कही सुनाई तक न पडा।

दूसरा : हमारे गाँव के लोगो की यही आदत है। जहाँ कोई अपना आदमी हुआ कि उसे व्यर्थ ही बड़प्पन दे डालते है। क्यों दिया है उस लड़के को यह बडप्पन ? क्या वह कभी आया था हमारे गोकुल में ? किसी समय बचपन मे ही वह गोकुल छोडकर चला गया था। सुनता हूँ कि उसके बाद उसने कभी कदम भी नही रखा इस गोकुल मे ! पर हमारे ये बूढे रोज ही उसकी वीरता के गीत गाते है ! कहते हैं कि उसने यह किया और वह किया ! कोई गया था क्या देखने ? घर में घुसे रहते हैं, समाचार गढ़ा करते हैं और फिर दाढ़ियाँ हिलाते हुए एक दूसरे से काना-फूसी करते है। कृष्ण की प्रशंसा के बडे-बडे पुल बाँधते है। अरे भई, हमारा क्या ? सुन लेते है और चुप रहते है। इन बूढो के खिलाफ अगर कुछ कहें तो वह उनसे बर्दाश्त नही होता। उन्हें लगता है कि जो वे कहें वही सच माना जाये। और फिर मार देते हैं चंडूखाने की गप्प ! कहते है कि कृष्ण ने अपनी छिगुरी पर गोवर्धन पर्वत उठा लिया था !

तीसरा : और वह भी कब ? जब कि वह सिर्फ आठ साल का था ! (हँसता है।) अब बूढे कहते है, इसीलिये भई, मानो सच। बस, और क्या ?

दूसरा : और कहते है कि उस लडके ने बडे-बडे असुरों-दैत्यों

को मौत के घाट उतारा—सो भी अकेले,—समझे महाशय ? और कहते है कि कंस को तो उसने एक ही घूँसे में काम तमाम कर दिया—वह भी कब ?—जब कि उस लडके की उम्र सिर्फ आठ वर्ष की थी। कंस अच्छा भारी-भरकम दानव ही था। वैसे वह कोई राक्षस नही था—था कृष्ण का मामा ही, याने यादव। पर उसका डील-डौल काफी लम्बा-चौडा, ऊँचा-पूरा और भारी-भरकम था। वह एक काफी तगडा आदमी था। इसीलिये उसे राक्षस कहते थे! बूढे यह सब कहते है और हमें सुनना पडता है। हमने एक गुनाह किया है न? यही कि हम देर से पैदा हुये।

पहला तो मैं तुमसे अभी जो कह रहा था न, कि एक महत्व-पूर्ण समाचार आया है, उसे सुनो अब। वह समाचार यह है कि यहाँ का जो वह कृष्ण था न, उसी ने पाँडवों की सहायता की और इसीलिये पाँडव जीते।

तीसरा उसने क्या सहायता दी?

पहला . यह तो कोई कुछ नहीं बताता। सिर्फ इतना ही बताते है कि वह अर्जुन का रथ हाँकता था—कहते हैं इस कोचवान ने पाँडवो की बडी मदद की। इसके रथ हाँकने से ही प्रचड प्रतापी कौरवो को पाँडवों ने धूल मे मिला दिया।

दूसरा : हो सकता है? हम क्या जानें? न हम कभी लडाई लडे हैं और न हमने कभी कोई लडाई देखी है।

केवल रथ हाँकने से ही लडाई में विजय किस तरह मिलती है, यह तो किसी लड़ाके से ही पूछना चाहिए। तुम्हारा तो यह हाल है कि कही किसी से कुछ सुन लेते हो और फिर सारे गाँव में उसी का ढिढ़ोरा पीटते रहते हो! समाचार गढ़ने का शौक जो है न तुम्हें!

पहला : तो हमें यहाँ दूसरा काम ही क्या है? सुबह उठते ही गायें ढील देते है और शाम को उन्हें लाकर खिरक में बाँध देते हैं। सुबह हमारे बुजुर्ग दूध दुहते है और फिर हमारी माँ-बहिनें दूध से घडे भरकर, बेचने मथुरा जाती है। हमे दूसरा और काम ही क्या है? इसलिये अगर कही कुछ सुन लेते हैं तो अपनी तरफ से थोडा नमक-मिर्च लगाकर उसे फैला देते हैं सारे गाँव मे! अगर कही से कोई समाचार मिला ही नही तो गढ़ लेते हैं एकाध अपनी तरफ से और फैला देते है सारे गाँव में!

तीसरा : अरे देख, वे गायें भटक गईं न उस तरफ?

दूसरा : भटक जाने दे भटक गई तो। वे सब पहुँच जायेंगी अपने घर। वे जानती हैं अपने घर का रास्ता। जरा बाँसुरी निकालो न अपनी?

पहला : ना-ना बाबा! इन गायों की बडी बुरी आदत पड़ गई है। बाँसुरी की आवाज सुनते ही वे फिर से एकदम लौट पडेंगी। कहते है कि उस कृष्ण के कारण ही उनकी यह आदत पड गई है और अब वही आदत पडी हुई है इनमे। जाने दो उन गायों को अपने घर—(देखकर) ये कौन महाशय जी चले आ

रहे हैं ? कोई नया चेहरा दीख रहा है ! साथ में कोई सामान-वामान भी नहीं दिख रहा है ! दूसरे गाँव से जब कोई आता है तो उसके पास थोड़ा-बहुत सामान होता ही है । लेकिन ये हजरत · ···

दूसरा : पर यार, यह मनुष्य तो अलग ही दीख रहा है । दाढ़ी-मूँछ बिल्कुल नदारद ! बूढ़ा दीख रहा है । बाल पके हुये दीख रहे हैं—चाँदी के तार की तरह । पोशाक पूरी देहाती है । पर हाँ, बिल्कुल बुद्धू हो, ऐसा नहीं मालूम होता है ।

(कृष्ण आते हैं । उनकी पोशाक मामूली ग्वाले की तरह है । सिर नङ्गा है और उनके स्वच्छ सफेद बाल पीठ पर लहरा रहे हैं ।)

कौन हो जी तुम ?

कृष्ण : तुम्हारा नाम क्या है लडके ?

दूसरा : पहले मैने जो प्रश्न किया उसका उत्तर दो—कौन हो तुम ?

कृष्ण : मै एक पथिक हूँ ।

दूसरा : मतलब ?

कृष्ण : एक राहगीर हूँ । पहले मैं इसी गोकुल में रहता था । बहुत साल हो गये । अब बूढ़ा हो गया हूँ । सोचा जाऊँ एक बार अपनी जन्मभूमि के दर्शन कर आऊँ । क्या नाम है तेरा लडके ? किसका बेटा है तू ?

दूसरा : मेरा नाम हेमन्त है । किसका बेटा—यदि बता दूँ कि

मैं किसका बेटा हूँ तो क्या तुम मेरे बाप को पहचान लोगे ?

कृष्ण : शायद पहचान लूँ। शायद तेरा नाना निकल आये मेरी पहचान का—यानी जब मैं बिल्कुल छोटा था उस समय की पहचान का। और तू रे लडके, तेरा क्या नाम है ?

पहला : क्या तुम मेरे माँ-बाप का नाम जानना चाहते हो या नाना का—

तीसरा : या पर-नाना का ? (सब हँसते है।)

कृष्ण : देखो लडको, मै एक पुराने जमाने का सीधा-सादा ग्वाला हूँ। बहुत सालों के बाद यहाँ आया हूँ। इसलिए मै जानना चाहता हूँ कि मेरी पहचान के कौन-कौन लोग अभी तक यहाँ मौजूद हैं। क्या तुम सुदामा नाम के ब्राह्मण को जानते हो ?—और मधु मङ्गल को ?

हेमन्त : उस ब्राह्मणपुरा मे तो हम कभी कदम ही नही रखते। हाँ, पर दो-चार बूढे है वहाँ। उन्हीं में होंगे तुम्हारे वे सुदामा और मधु मङ्गल !

कृष्ण : अच्छा—क्या तुम सुबल को जानते हो ?

पहला : कौन ? मेरे नाना ?—हाँ ! है—अभी जिन्दा है—रोज हमारा सिर खाते है—उनका कोई एक कृष्ण था—बस, उसी की बातें सुनाते हें रोज। रोज वही-वही बाते सुनकर हमारी आफत हो रही है !

कृष्ण : अच्छा ? क्या वह पेंद्या भी है। लङ्गडा था—और थोडा तुतलाकर बोलता था।

हेमन्त : अजी वे तो हमारे नाना हैं । हाँ, वे भी [illegible] हैं हमारी राशि पर । नाक मे दमकर रखी है हमारी—रोज तङ्ग करते है ।

कृष्ण · क्या कृष्ण की बाते कहकर ?

हेमन्त हाँ ! हाँ ! हाँ ! किसी जमाने मे कोई एक कृष्ण था यहाँ । कहते है कहीं दूर जाकर वह बडा हुआ । वहाँ उसने बडी-बडी लडाइयाँ लडी और जीती ।

कृष्ण . कृष्ण ने लडाइयाँ जीतीं ?

हेमन्त हाँ ! हाँ ! हाँ ! क्यों केदार, तुम्हारे नाना भी तो यही चर्चा करते है न ?

केदार . (पहला) मेरी भी तो वही शिकायत है । सारङ्ग, तुम मजे में हो । अच्छा हुआ जो तुम्हारे नाना समय पर ही इस दुनिया से कूच कर गये···

सारंग . (तीसरा)—इसीलिए तो मै सुखी हूँ ।

कृष्ण · क्या है इसके नाना का नाम ?

हेमन्त . अरे मत बताना रे । यह किसी राजा का जासूस जान पडता है । भेद लेने आया है ।

सारंग · अजी, जासूस भी हो तो मेरा क्या कर लेगा ? मै किसी भी राजा बाजा के बखेडे में नहीं । मै राजनीति मे भाग ही नही लेता ! किस राजा का जासूस होगा यह ? अगर जासूस ही होगा तो धर्मराज का होगा—और धर्मराज तो हमारे ही राजा है ।

हेमन्त : अरे, तुम नहीं जानते। हमारे ही राजा हम पर संदेह करते हैं। और फिर यह ठहरा नया राज्य। शायद वे यह देखना चाहते है कि इस राज्य में कौरवों के पक्षपाती कौन-कौन है ?

केदार : कहीं यह कृष्ण का ही जासूस तो न हो ?

कृष्ण : खैर ! गनीमत है जो तुम लोगों ने मुझे ही कृष्ण नहीं कह दिया ? (वे सब हँसते है।) क्यों, हँसते क्यों हो ?

केदार : हँसे नहीं तो क्या करें ? अजी, कृष्ण क्यों आने लगे यहाँ ? आठ साल के थे तभी वे यहाँ से चले गए थे, इस अवधि में इतने उलट-फेर हो गये, पर कभी फटके भी नहीं इस तरफ—सो आज ही वह क्यों आने लगे ?

कृष्ण : हाँ। है तो बात ठीक। पर कृष्ण अपना जासूस यहाँ क्यो भेजेंगे ?

केदार : अजी वह तो मैने यूँ ही कह दिया था। कृष्ण कोई राजा नहीं है और न किसी देश पर शासन कर रहे हैं। उनके पास जासूस कहाँ से आये ?

कृष्ण : पर क्या तुम्हें यह पक्का विश्वास है कि मैं जासूस ही हूँ।

हेमन्त : नहीं ! यह हमारा अनुमान है ! पर मै यह पूछना चाहता हूँ कि तुम इतने खोद-खोदकर क्यो हमारे बाप-दादों के नाम पूछ रहे हो ?

कृष्ण : मैने तुमसे कहा न ?……

हेमन्त : इधर आकर बैठ जाओ न? कितनी देर तक खड़े रहोगे?

कृष्ण : अच्छा, अच्छा। (बैठते है।) इसी तरह बैठता था मैं अपने साथियों के साथ। तुम्हारे जैसे ही थे वे—बडे स्नेही, बडे श्रद्धालु और बडे संशयालु—तुम्हारे सरीखे—परन्तु तुम्हारे समान बडे नहीं थे। हम सब बालक-ही-बालक थे। बडा मजा लूटते थे। उस वक्त हमने खूब चोरिया की—दूध, दही और माखन की।•बडी नटखट थी उस वक्त की ग्वालनें ...

केदार · और आज की क्या कम हैं? वे भी नटखट ही हैं। पर अब हम चोरी-वोरी नही करते!

कृष्ण · (गहरी साँस भरकर) गये वे दिन! तुम क्या चोरियाँ करोगे? नामर्द हो गई है आज की पीढ़ी। उस वक्त सारे ग्वाले और ग्वालिनें हम बालकों से थर-थर काँपते थे। खुशी से हमें दूध, दही और माखन देते थे! पर चोरी के माल में जो मजा है उसका क्या कहना? वाह! (आँख मूँदकर धीरे से हँसते हैं।)

हेमन्त : (अपने दोनो साथियो से) देखो-देखो। कैसी आँखें मूँदकर बैठे हैं जैसे चोर-बिलाव हो! मेरा ख्याल है कि आज भी यह चोरी करने से बाज न आयेंगे।

कृष्ण : (फिर एक गहरी साँस छोडकर आँखे खोलते है।) गए वे दिन और उन चोरियों का आनन्द भी चला गया। कौन जाने, शायद वे ग्वालिनें भी चली गई हो!

हेमन्त कौन-कौन थीं वे?

कृष्ण : वैसे तो सैकड़ो थी। यदि नाम लेना चाहूँ तो अब याद भी नहीं आयेंगे। पर जो मुख्य-मुख्य थी उनमें से एक थी ललिता ..

सारंग : अजी वह तो मेरी नानी है।

कृष्ण : अच्छा, यह बात है? क्या वह जिंदा है अभी?

सारंग : हाँ। है तो, खासो चङ्गी है। मेरी माँ से भी जवान दीखती है।

कृष्ण सच? और विशाखा?

हेमन्त . वह तो चल बसी परसाल।

कृष्ण : और सगुणा?

केदार . वह भी मर गयी। हो गये दस साल।

कृष्ण · और राधा?—वृषभानु की बेटी?—अभय की पत्नी?

हेमन्त : हाँ। वह है।

सारंग . अजी, केवल है ही नहीं—हमारी नानी और उसकी बडी घनिष्ठता है—दोनो की खूब छनती है। दोनो घटों बैठी बातें करती रहती है और बातें होती है कृष्ण की!

कृष्ण . अभी तक?

सारंग : हाँ! हाँ! अभी तक! भजन की टेक की तरह कृष्ण की बातें ही दोहराती रहती है दोनों।

कृष्ण · सच? इतने वर्षों तक? हाँ! क्या कभी मिली थी वे कृष्ण से?

हेमन्त . कैसे मिलेगी ? कोई भी ग्वाला इस गोकुल से बाहर गया भी है कभी ?

कृष्ण · और ग्वालिने ?

हेमन्त . तुम भी खूब हो भई ! अजी, जब पुरुष ही गाँव नहीं छोड़ते तो औरतें गाँव छोडकर कहाँ जायेंगी मरने को ?

कृष्ण : ब्याहकर जो जाती होगी गोकुल के बाहर ?

हेमन्त : हमारी बरही कहो या बारहीं कहो—विवाह वगैरह सब उसी मे आ गया—जो कुछ भी होता है, इसी गोकुल मे होता है। वैसे हस्तिनापुर कौन बडी दूर है यहा से ? पर अभी तक हमारे गाव के किसी भी आदमी ने न दुर्योधन को देखा है और न धर्मराज युधिष्ठिर को। तो बताओ समुद्र में बसी द्वारका मे कौन जायेगा कृष्ण से मिलने ?

कृष्ण हाँ। यह तो सच है। पर क्या वह कृष्ण कभी फिर आए ही नही ?

केदार : वह यहा क्यो आने लगे ? वह अब कितने बडे हो गये है।

कृष्ण और फिर भी लोग उन्हें याद करते है ?

केदार . इसीलिये तो हम कहते है कि हमारे बूढे महामूर्ख है। हम तो ऐसे आदमी का कभी नाम तक न लेते।

कृष्ण : मान लो वह कृष्ण एक दिन आ जाता तो तुम क्या करते ?

केदार : (अपने दो साथियो से) बताओ जी हम लोग क्या करते ?

सारंग : वही तो मैं भी पूछता हूँ कि बताओ हम लोग क्या करते ?

हेमन्त : उसे हम यह भी पता न चलने देते कि हम उसे पहचानते है ।

कृष्ण : क्या उसके इतने बडे हो जाने पर भी ?

केदार : हाँ हाँ । इतना बडा हो गया था इसलिए । बडा हो तो अपने घर का । हमें क्या लेना-देना है उसके बडप्पन से । हम खुद अपने घर के राजा हैं । बड़े हैं !

कृष्ण · मान लो वह आते और कहते—"मित्रो चलो मेरे राज्य में । मैं तुम्हें अपने से भी बडा बनाये देता हूँ ।" तब तुम क्या कहते ?

हेमन्त : उन्हें कोई उत्तर न दे उनकी ओर पीठ फेर कर सीधे अपने घर चल देते और भीतर से घर के दरवाजे की जजीर लगा लेते ।

सारंग : नही ! मै तो सीधा उनके मुँह पर ही फटकार देता । कहता कि तुम इतने बडे हो तो अपने घर के । हमारा तुमसे क्या वास्ता ? बिल्कुल सीधा पूछता उनसे कि तुम इतने दिन मुँह छिपाए कहाँ बैठे रहे ? आज ही कैसे याद आ गई हम लोगों की ? फिर उनके उत्तर की प्रतीक्षा न करके चल देता उनके पास से ।

कृष्ण : और तू रे केदार ?

केदार : *हमसे कौन आता है पूछने ?*

कृष्ण *और अगर आ ही जाता तो ?*

केदार *तो मै उससे कहता—आ ही गए हो तो चलो हमारे घर—दो कौर दही-भात खा लो—चाहो तो विश्राम कर लो और फिर रास्ता नापो अपने घर का ।*

कृष्ण *ये तो हो गए तुम लोगों के विचार; अब बताओ ऐसे अवसर पर तुम्हारे बुजुर्ग क्या करते ?*

हेमन्त *वे क्या करते यह हम नही कह सकते । उनकी पीढ़ी अलग है—उनके विचार अलग है । हमारी पीढी और हमारे विचार उनसे भिन्न है । किसी भी विषय में हमारी उनसे नही पटती । वे चलते हैं अपनी राह और हम चलते हैं अपनी राह ।*

कृष्ण *क्या तुम यह बात उनके सामने कह दोगे ?*

हेमन्त *हम कौन किसी के बाप से डरते हैं ?*

कृष्ण : *क्या अपने बाप से भी नहीं डरते ?*

हेमन्त : *अपने बाप से भी नहीं और न किसी दूसरे के बाप से भी । क्यो यही बात है न केदार ?*

कृष्ण · *और यह किसका बाप चला आ रहा है सामने से ?*

(सब लोग मुडकर देखते है ।)

हेमन्त *अब तुम्ही पहचानो न ? तुम तो थे न यहाँ ?*

(पेंद्या* आता है । लाठी टेकता आता हुआ वह सब की ओर ध्यान से देखता है । वह एक पैर से लगडा है और बोलने मे थोडा तुतलाता है ।)

---

*कृष्ण का बाल मित्र मनसुखा, मराठी मे पेंद्या ।

पेंद्या : कौन-कौन बैठा है रे यहाँ ?

हेमन्त : क्या तुम्हें दीखता नही है ?

पेंद्या : ठीक-से दीखता नही है इसीलिये तो पूँछ रहा हूँ। और यह कौन बैठा है रे भई ?

केदार . पहचानो न ? वह कहता है कि बचपन में वह था ? यहाँ।

(पेंद्या धीरे-धीरे आकर कृष्ण के सामने बैठ जाता है और बडी देर तक उसकी ओर ठीक ध्यान से देखकर जोर से "अरे कौन, कन्हैया—कृष्ण।" पुकार कर उसके गले मे बाहे डाल देता है और गद्‌-गद्‌ होकर रोने लगता है।)

तीनों ' अरे यही है क्या कृष्ण ?

हेमन्त : अरे हट ! कृष्ण है राजाओ के राजा ! यह भुक्कड-कंगाल कहाँ से होगा कृष्ण ?

कृष्ण : (पेंद्या से) क्या तुम मुझे पहचान गए ?

पेंद्या : इतना बूढ़ा हो गया है तू, पर अभी तक तेरी आदत नही गई रे कृष्ण ! अरे हजार वर्ष भी हो जायें, पर यह पेंद्या क्या अपने कृष्ण को कभी भूल सकता है ?

कृष्ण : बूढे महाराज, आप गलती कर रहे है—(देखकर) हँ, हूँ। ठहरो। जरा एक तरफ तो हट जाओ। यह और कौन आ रहा है ? देखें ? वह क्या कहता है ?

(सुबल दौडता हुआ आता है और "कृष्ण"-"कृष्ण" कहता हुआ कृष्ण को अपनी छाती से चिपका लेता है।)

केदार . अरे, आज क्या ये सब बूढे पागल हो गए है ?

सुबल . अरे लडको, आज नहीं। अरे उस वक्त से ही इसने हमे पागल कर दिया है।

कृष्ण और मुझे भी पागल कर दिया था तुम सब लोगों ने। बचपन के वे दिन जब याद आते है तो बुढ़ापे का थका हुआ मन आज भी उल्लसित हो उठता है।

पेद्या : हमें तूने इस तरह क्यो भुला दिया रे कृष्ण ? बचपन के वे चन्द दिन—पर उनकी यादें आज भी हरी हैं। ऐसा लगता है जैसे यमुना के किनारे बालू मे हम कल ही खेलते थे—छाक-कलेवा की गठरी खोलते थे, एक दूसरे को खिलाते थे। मेरे मुँह की छाँछ की कुल्ली भी तू अपने मुँह मे ले लेता था ! तुझे याद है न ?

केदार : क्या कहा ? छाँछ की कुल्ली ? एक के मुँह की दूसरे के मुँह में ? (खिलखिला कर हँसता हुआ अपने साथियो की ओर देखता है और तीनो हँस पडते है।)

सुबल . देखो-देखो कृष्ण ! इस नई पीढ़ी को देखो। क्या ख्याल है तुम्हारा ?

कृष्ण : इसमें ख्याल की क्या बात है ? हम अब पिछड गये है। हमें अब कौन पूछता है ? आज भी जब हमें वह याद आती है तो हृदय आनन्द से भर कर

गद्-गद् हो उठता है । (तीनो लड़के हँसते हैं। क्षण भर के लिये उनकी ओर देख कर उन्हे लक्ष्य कर कृष्ण कहते है ।) कभी ली थी ऐसी कुल्ली तुम लोगों ने ?

केदार : अरे हटो ! हमे बीमारी हो जाएगी न ? आखिर स्वच्छता और सफाई भी तो कुछ होती है न ? किसी की जूठी कुल्ली ? ना-ना बाबा ! भगवान बचाए !

पेंद्या : नहीं रे भाई । तुम यह नहीं समझोगे । भगवान ने तुम्हें वह हृदय ही कहाँ दिया हे । हम बूढ़ों की बातें सुनते हुए व्यर्थ क्यो बैठे हो यहाँ ? जाओ, अपना काम करो ।

हेमन्त : हमारे सामने इतना बढ़िया नाटक हो रहा है और तुम कहते हो कि उसे छोड़कर हम चले जायें ? क्यों जी सारङ्ग—क्यो जी केदार, तुम्हारी क्या राय है ?

सारंग : नही-नहीं । इतना सुन्दर नाटक छोडकर क्या हम जा सकते हैं । अभी तो और भी कई पात्र आयेंगे ।

कृष्ण : और क्यो रे पेंद्या, कुब्जा जब मथुरा से लौटी थी तो वह यहीं गोकुल में ही आकर रही थी न ? क्या वह अभी जिदा है ?

पेंद्या : हाँ । जिन्दा है हुजूर ! जा रे सुबल हर एक को खबर कर दे—नही तो कृष्ण, तू ही चल न गोकुल मे ?

कृष्ण : नहीं-नहीं । तुम लोगो में यह ढिंढोरा न पीटो कि मै आया हूँ। मै देखना चाहता हूँ कि कौन-कौन मुझे पहचानता है।

सुबल : अच्छा, यह बात है ? तो मै किसी दूसरे बहाने से सबको यहाँ ले आता हूँ। अरे—वह देखो, कुब्जा तो यहीं आ रही है। अब उसे कुब्जा कोई नहीं कहता। सब उसे अब असली नाम से ही जानतें हैं—मोहिनी कहते है। याने पहिले कहते थे—अब तो वह बूढ़ी हो गई है।

कुब्जा : (प्रवेश करके) मैंने शायद सपना ही देखा था। एक ओर तो हट जा, पेंधा। और सुबल, तू भी जरा उस तरफ खिसक जा। (कृष्ण के पास जाकर उसे ध्यान से देखती हुई) तुम कृष्ण ही हो न ?

कृष्ण : और तुम मोहिनी ही हो न ?

कुब्जा : मोहिनी नहीं। कुब्जा हूँ।

कृष्ण पर तुम्हें ऐसा क्यों लगा कि मै ही कृष्ण हूँ ?

कुब्जा : अरे, यह औरतो की नजर है। और फिर मै तो अभिनेत्री हूँ। नाटक में जवानों को बूढ़ो का अभिनय करते हमने देखा है। इसलिए जवान आदमी बूढा होने पर कैसा दीखेगा इसकी हमें कल्पना है। कोई मेरे कानों में गुनगुना रहा था—वह देख कृष्ण आये है—वह देख कृष्ण आए है। मै आँगन बुहार रही थी—झाडू वहीं छोड दी। इधर-उधर देखा। फिर कोई आकर कान में गुन-गुनाया—वह देख, कृष्ण आए

है। बस, एकदम निकल पडी—लकडी टेकते-टेकते। कानों मे वही गुन-गुनाहट थी—जल्दी चल। वह देख, कृष्ण आए है। और अब यहाँ आकर देखती हूँ—(उन्हे सहलाती हुई) अलाय-बलाय टले, पाप और अमङ्गल दूर हो! चिरायु हों मेरे कृष्ण! कितना नाम कमाया तुमने इस ससार में ·········

पद्मा : यह किसने कहा तुझसे?

कुब्जा : तू चुप बैठ रे लङ्गडे। बीच में मत बोल। कितना नाम चमकाया तुमने सारी दुनिया में! कितना यश फैला तुम्हारा इस संसार मे। सब के मुँह पर तुम्हारा नाम था। सब तुम्हारा नाम लेकर चिल्लाते थे—नाचते थे, कूदते-फुदकते थे! कृष्ण-कृष्ण—जय कृष्ण-कृष्ण (नाचते हुए कहती है। तीनो नौजवान हँसते है।) हँसते क्यो हो रे लडको?

हेमन्त : कुछ नहीं—बुढ़िया का नाच देखकर हँसते है। क्या जवानी में भी इसी तरह नाचती थी?

केदार : क्या यूँ ही लाठी टेक-टेक कर नाचती थी?

सुबल : अरे लडको, हँसो मत। उस समय जब यह नाचने लगती—गाने लगती तो सारी महफिल मस्त हो जाती थी। लोग इस पर अपनी जान कुरबान कर देते थे। अपने हाथ के सोने के कगन निकाल कर इसकी ओर फेंक देते थे। उस समय यह ··

कुब्जा : (जोर से चिल्ला कर) चुप रह! चुप रह! वह याद न दिला। इस कृष्ण ने मेरा सत्यानाश कर डाला।

मै कस की दासी थी—कूबडी थी। इस कृष्ण ने मेरी पीठ सीधी की, मुझे सुन्दर बनाया—हाव-भाव सिखाये और फिर मेरा दुर्भाग्य आया सभी मेरे पीछे दौडने लगे। बडे-बडे राजा लोग भी मेरा नाम सुनकर मुझे देखने के लिये दूर-दूर के नगरों से आते थे। मेरे चरणों पर गिरते थे—मेरे चरण चूमते थे। सुना कृष्ण, तुम उधर चले गये—हमसे मुंह मोड लिया—कभी पूछताछ भी न की हमारी। पर मेरे पीछे एक बला लगा गए। मै कूबडी ही अच्छी थी। पर तुमने मुझे मोहिनी बना दिया। पहले-पहल अच्छा लगा। पैसे मिलते थे—नाम होता था। पर आगे चलकर उन चापलूसों की चापलूसी घिनौनी लगने लगी—उनसे घृणा होने लगी—उन पर चिढ आने लगी। मै कूबडी ही अच्छी थी। तुमने मेरा सत्यानाश कर डाला। तुमने! तुमने!! यही कर रहे हो तुम सब तरफ। मूर्ख को सिंहासन पर बिठाते हो और खुद दूसरो की गाडियाँ हॉकते हो। (कृष्ण हॅसते है।) हॅसते क्यो है? तुम्हारा तो खेल होता है पर, हमारी जान जाती है।

कृष्ण . पर अब तो ऐसा नही होता न?

कुब्जा : अब नही होता—तुमने मेरी पीठ सीधी कर दी थी—पर उम्र की गठरी जब मेरी पीठ पर लदी तो मै फिर से कुबडी हो गई। अब मेरी तरफ कोई नही देखता। मेरे चरण चूमने अब कोई नही आता। अब कोई नही फेंकता सोने के कॅगना मेरे चरणों पर। मै अब

रोज तुम्हारी याद करती हूँ। उस वक्त याद नहीं आती थी तुम्हारी—अब जब फिर से कूबडी हो गई तो मुझे मेरा कृष्ण याद आया—अंत मे आज तुम आ गए। अब मेरी पीठ टेढ़ी देखकर उसे फिर से सीधी न बना देना तुम, समझे?

पेद्या : कितनी कृतघ्न है यह औरत? सुख भी इसे दुख लग रहा है? क्यों री?

कुब्जा : अरे, क्या वह सुख था? नहीं। दुख से भी बडा दुख था वह। पाप था—एक अभिशाप, अब वह अभिशाप छूट गया। मै फिर से कुब्जा बन गई। और, तुम भी तो अब बूढे हो गए हो, कृष्ण। बाल सफेद हो गए है तुम्हारे—पर हाँ है पहले जैसे ही घूँघर वाले—वही तुम्हारा सुन्दर मुखडा—वही तुम्हारी मोहिनी मुस्कराहट—आठ साल के लग रहे हो मुझे।

हेमन्त : एक शून्य चढ़ गया है ऊपर। अस्सी साल के हो गये है ये महाशय। अरे भई, इस बुढ़िया की आँखें तो कम-से-कम किसी अच्छे डाक्टर से जँचवा लो कोई।

कुब्जा : देखो-देखो कृष्ण। आजकल के इन लडको को देखो। इनमे आदर नही—श्रद्धा नही—भक्ति नही। जब हृदय ही नही है तो मानवता इनमे कहाँ से होगी?

केदार : अरी ओ बुढ़िया, जबान सम्हालकर बोल।,

कुब्जा : अरे ओ नौजवान, आँखें खोलकर देख। जिसने सारी दुनिया को हिला दिया वह तेरे सामने खड़ा है। क्या उसके चरणों पर सिर रखा तूने ?

केदार : हमारे इन बुजुर्गों ने भी कहाँ उसके चरण छुए है ?

पेंद्या : लडको, तुमने देखा नही ? हमने उसे अपने हृदय से लगाया—कस मसा कर छाती से चिपकाया— हृदय से हृदय मिलाया—हृदय के बोल हृदय ने सुने। वे तुम्हें सुनाई नही पड़े, पापियो ! हमें आलिंगन करना चाहिये और तुम्हें पैर छूना चाहिए इस भगवान के। (लडके हँसते है।) देखो—देखो कृष्ण, यह तुम्हारी नई पीढी है। यही नई पीढी अब आगे दुनिया का कारोबार चलायेगी।

सुबल . क्यों अपने मूल्यवान शब्दो को व्यर्थ खर्च कर रहा है, पेंद्या ! इन लोगो ने सुख के दिनो मे जन्म लिया है। हमें भयङ्कर राक्षस तङ्ग करते थे—हमारा जीना दूभर हो गया था—वे हमारा गोधन चुराकर ले जाते थे—हमारे घर-द्वार लूटते थे। इसके बाद ये बच्चे पैदा हुये है। इसीलिए आज हमारा मजाक उडाते है। हँस रहे है दाँत निपोरकर। हमने यन्त्रणायें सहन की—हम भूखों मरे—हम अपने घर-द्वार से वंचित हो गये—कृष्ण आये इसीलिए हम सुखी हुये। ये बच्चे यह सब कहाँ जानते है ? इसका ज्ञान ही कहाँ है इन्हें ? रात के बिना दिन का क्या मूल्य है यह नहीं मालूम होता। वह रात इन्होंने देखी ही नहीं। इसी-लिये हँस रहे है हम पर।

कुब्जा : इसीलिए ये हँस रहे है हम पर ! हँसो ! लडको, हँसो ! राक्षसों के अन्धकार के बाद यह चलता-फिरता प्रकाश आया इसलिए तुम्हें हँसने का अवसर मिला ! इसीलिए बूढ़ों की खिल्ली उडाते हो तुम ! ये बूडे किसी समय किस तरह मरे—खपे थे इसकी तुम्हें जानकारी नहीं है—इसलिए हँस रहे हो !

केदार : (अपने दोनो साथियो को लक्ष्य कर) सुन लो इस बूढी कुटनी का तत्वज्ञान ।

कुब्जा : यह तत्वज्ञान नही है । तत्वज्ञान बताने के लिये मैं कृष्ण नहीं हूँ । पहले क्या हुआ था इसकी थोडी-सी कल्पना तुम्हे दी जा रही थी— पर व्यर्थ । तुम उसे नहीं समझोगे । अपनी जवानी के घमंड मे ही मर जाओगे । तुम्हारी तरह मै भी बहक गई थी, उन्मत्त हो गई थी । एक नाश-सा चढ़ गया था मुझ पर । पर जब पुनः कुब्जा हुई तो खट-से मेरी आँखें खुल गईं । अभिमान से फूलकर ऊपर देख रही थी, पर जब समय ने सिर पर सवार होकर मुझे दबोचा तो नीचे देखने को मजबूर हुई और तब मुझे सारी दुनिया दिखाई दी । मुझे मिट्टी के कण-कण मे ईश्वर के दर्शन हुए । ईश्वर किस तरह कण-कण में समाया हुआ है यह मेरी इस (जमीन पर हाथ मारकर) मा ने मुझे दिखाया ! क्यो कृष्ण, बोलते क्यो नहीं ?

कृष्ण : मै क्या बोलूँ ? तुम लोग अपनी-अपनी राम कहानी सुना रहे हो । यहाँ मुझे बोलने के लिए अवसर है कहाँ । और सच बताऊँ ? मै यहाँ बोलने के लिये

नही आया हूँ—सुनने के लिए आया हूँ। मै देखने के लिये आया हूँ—इतने सालो में क्या कुछ परिवर्तन हुआ यह देखने आया हूँ। कैसा सूना-सूना, भूला-भूला-सा लगने लगा है मुझे यह गोकुल, क्यों!

पेन्ना . क्यो सुबल? गोकुल में आज सन्नाटा दीखता है न? कितनी हलचल रहती थी यहाँ। उस समय हम लोग हमेशा टोह लेते रहते थे कस के राक्षस कब आ धमकें इसका कोई पता न रहता। इसलिए हम हमेशा चोकन्ने रहते और टोह लेते रहते। कही जरा-सी भी आहट मिलती कि हम लोग घर-घर की खोज-खबर लेने दौड पडते और सबको सावधान कर देते। और फिर हर एक अपनी-अपनी गायो और बछडों को खिरक में बन्द कर दरवाजे लगा लेता।

कुब्जा . और जब सब ओर सन्नाटा छा जाता तब ग्वालिनें मथुरा के बाजार जाती और रास्ते में तुम उन्हें रोकते, उनसे दान माँगते। और फिर वे तुम्हें चकमा देकर भागने की कोशिश करती और मै अपने टेढे पैर को अडाकर उनका रास्ता रोक देती। कृष्ण, याद है न तुम्हें?

कृष्ण : ये बातें तुम्हें याद आयेंगी। मुझे याद आता है वह अलग है। मुझे याद आता है तुम सबका प्रेम! तुम सबकी आत्मीयता! तुम सबके प्यारे-प्यारे अल्हडता भरे काम!

कुब्जा : वह सब देखने के लिए मै यहाँ न थी। मै उस समय मथुरा में थी। उस समय भी अभागिनी और आज

भी अभागिनी! वह तुम्हारी रास लीला! मैने तो केवल सुना है उसके बारे में! शरद ऋतु की वह चाँदनी रात---वह सघन कुंजवन और गहरी अमराई---वे नाटे कद की सुन्दर ग्वालिनें, वे डंडो के खेल, वे नृत्य के समारोह, वे नाना प्रकार के खेल, वह रास लीला, यह सब सिर्फ सुना है मैने। आज भी गोकुल की ग्वालिनें रास-लीला के वे गीत गाती है

हेमन्त : क्यों जी, क्या सचमुच कभी ऐसी रास-लीला हुई थी यहाँ। हम उन गीतो को सुनते है। कहते है कि उस समय गोकुल में स्वर्ग उतर आया था।

केदार : अरे, वे तो इन बूढ़ो की गपे है। क्या कभी स्वर्ग धरा पर आ सकता है? इनकी एक गप्प और सुनो—कहते है कि कृष्ण जब अपनी बासुरी बजाते थे तो ग्वालिने ही नहीं, बल्कि गाएँ भी उनके पास दौड आती थी। (हँसता है।)

पद्मा : अरे हाँ! कृष्ण, क्या अब तुम बाँसुरी बजाना भूल गये? अगर द्वारका मे भी तुम अपनी बाँसुरी बजाते तो उसके स्वर हमारे कानो मे पड़ते और हम दौडकर तुम्हारे पास पहुँच जाते। तुमने बडी-बडी लडाइयाँ लडी, राजनीति मे उलझे रहे, नए-नए सिहासन स्थापित किये—नए-नये राज्यों का निर्माण किया, पर बाँसुरी न बजाई। अपने मित्रो के लिए तुमने वकालत की—उनके मध्यस्थ बने, उनके लिए तुम मरे और खपे, पर बाँसुरी बजाना भूल गए। इसीलिये तुम्हें हमारा विस्मरण हो गया!

कृष्ण : तुम ठीक कहते हो । मैने बाँसुरी नहीं बजाई । सदा मेरे ओठो से लगी रहने वाली मेरी बाँसुरी —हरित बाँस की बाँसुरी—मेरी मुरली मेरे हाथ से कहाँ गिर पडी, कौन जाने ? भूल गया था उस मुरली को । क्या मेरी मुरली इसी गोकुल में कही रह गई है ?

पेद्या : तुम भी अजीब बुद्धू हो, कृष्ण । जिस मुरली की आवाज से तुम सिर्फ मनुष्यो को ही नही, बल्कि गायो को भी अपनी ओर खीचकर ले आते थे, उस मुरली को तुम कहाँ भूल गये, कैसे भूल गये ।

कुब्जा : मैने नहीं सुनी थी वह मुरली—केवल उसकी कहानियाँ सुनी थी । उस मुरली को सुनने के लिए मेरे प्राण लालायित हो रहे थे । 'सोचा था कि वह गोकुल में तुनने को मिलेगी । इसीलिए मथुरा छोडकर गोकुल मे आई । पर यहाँ मुरली के बदले मुझे लम्पटो के कर्कश भोपू ही सुनने पडे । सच बताओ, कहाँ गई तुम्हारी वह मुरली ?

कृष्ण . मेरी मुरली इस गोकुल ही मे खो गई । गोकुल के बाहर वह गई ही नहीं । अब मुझे यह चिन्ता हो रही है कि लोग कहेंगे कि गोकुल का कृष्ण अलग है और मथुरा का अलग । मथुरा जाकर मैने राजनीति मे प्रवेश किया तो मुरली गई और रासलीला भी गई । अब उसकी सिर्फ याद रह गई है । मुरली मेरे कान से लगी निरन्तर गुनगुनाती थी—'तू क्यों उलझ गया इस राजनीति मे—चल, हम गोकुल

चलें—मुझे ओठो से लगा, फिर गोपियाँ दौडकर आयेंगी—फिर रास रचा और नृत्य और संगीत आरम्भ कर।' राजनीति मे फँस जाने से मै रूखा हो गया हूँ—कला का अंकुर कुम्हला गया है। इसीलिए आज यहाँ आया था। पर देखता हूँ तो सभी बूढे हो गए है। इनमे से अब कौन-कौन नाचेगा रास-लीला में ?

केदार : अरे हाँ-हाँ! एक बार तुम सब बूढे और बूढ़ियाँ जरा नाचकर तो दिखाओ—मजा आजायेगा। उस बुढिया ने थोडा-सा नाच दिखाया ही था अभी। अब हम देखना चाहते है कि यह बुढ़िया राधा कैसे नाचती है ?

पेद्या : हँसो नही, लडको! तुमने उस स्वर्ग का वैभव नही देखा। गोकुल में नन्दनवन उतर आया था—नृत्य और मधुर संगीत से समूचे गोकुल की भूमि गूँज उठती थी। एक मै ही था जो नाच नही सकता था—लङ्गडा जो हूँ न ? पर सबको नृत्य करते हुए जी भरकर देखता था—हृदय भरकर सुनता था उन गीतो को। वह स्वर-सङ्गीत आज भी मेरे कानो गूँज मे रहा है। राधा आज तुम्हें बूढ़ी दीख रही है। पर जब राधा और ललिता नाचने लगती थी—खैर छोडो वह बात भी! अब तो सिर्फ वे यादें ही बची है—बस!

सुबल : कृष्ण, तुम क्यों आए यहाँ ? हम उन पुरानी यादो को भूलने की कोशिश कर रहे थे। भूलकर भी वे नहीं

भुलाई जा सकती थी। अब आये भी तो अपनी मुरली भूल आए। टेढ़ी गरदन किये अपने ओठो से लगाकर जिस मुरली को तुम बजाते थे, वह मुरली क्या अब हमें कभी न सुनाई देगी ?

कुब्जा   क्या कही से एकाध मुरली ले आऊँ ? बजाओगे ?

पेद्या : नही। नही। चाहे जिस मुरली को बजाने से काम नही चलेगा। वह तो कृष्ण की ही मुरली होनी चाहिए।

कुब्जा : पर वह गई कहाँ ?

कृष्ण : यह तो मै नहीं जानता।

पेद्या : सब कहते है कि तुम्हें सारी दुनिया की खबर रहती है। और स्वय तुम्हारी मुरली कहाँ खो गई यह तुम न जान सके।

कृष्ण : हाँ। यही मै नहीं जान सका। और वह जान जाऊँ इसीलिए तो यहाँ आया हूँ—यहाँ आते तक उसकी याद ही न थी—अब याद आ गई है--मैं बूढ़ा हो गया हूँ—अब वह मुरली इन झुर्रीदार ओठो के पास नही आएगी—(क्षण भर के लिये रुकते है।) तुमने क्यों याद दिलाई उसकी ? और दूसरी कोई भी नहीं है क्या यहाँ ? क्या एक-एक को खोजने मुझे ही जाना होगा ?

सुबल : अरे लडको, यहाँ क्या बैठे हो ? जाकर गोकुल में खबर दे आओ न ?

केदार : वहाँ जाकर क्या बताऊँ ?

सुबल : कहना कि कृष्ण गोकुल में आये हैं।

केदार : ऐसा ? कौन है ये कृष्ण ?

सुबल : वाह ! यह भी नही जानते । सुनो, बताता हूँ --कुछ दिन पहले यहाँ व्यास मुनि आए थे-- याद है ?

तीनों . हाँ-हाँ। आये थे।

सुबल : वे क्यो आए थे यहाँ ?

केदार : अरे, वे कथा कहते थे। स्त्रियां और बच्चो की बडी भीड लग जाती थी उनकी कथा सुनने !

सुबल : वे अपनी कथा मे क्या कहते थे ?

केदार : उनकी कथा सुनने की किसको गरज थी ? कौन सुनता उस बूढे महन्त की बकवास ?

हेमन्त . मैने सुनी-थी उसकी कथा ! बडी रसीली वाणी थी उसकी। बूढा बडी लम्बी-चौडी गप्पे हाकता था। कहता था कि कृष्ण ने घमासान युद्ध के बीच अर्जुन नाम के किसी वीर को गीता सुनाई⋯⋯

सुबल . और गीता में क्या कहा ?

हेमन्त मै कौन उस कथा मे जाकर बैठा था ? जहाँ कथा हो रही थी वहाँ से मै गुजर रहा था। सोचा थोडी देर के लिए सडक पर रुककर देखूँ कि ये बूढे महाशय क्या कह रहे है। हाँ तो कृष्ण ने गीता सुनाई--उस गीता मे बडे कठिन शब्दो का उपयोग कर रहा था वह दढ़ियल—आगे उसने कहा कि लडाई के भय से जिस अर्जुन के छक्के छूट गये थे, वही अर्जुन गीता

सुनते ही साँप की तरह फुफकार उठा और एकदम लडने लगा !

कृष्ण : *क्या कहा ?*

सुबल : *वह ठीक कहता है। व्यास मुनि ने ही कहा था। वे कहते थे कि तुमने अर्जुन से कहा—"तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् !"*

कृष्ण : *क्या यह व्यास मुनि ने कहा कि अर्जुन से मैंने यह सब कहा था ?*

सुबल : *हाँ वह देखो ललिता आ रही है—और राधा भी आ रही है। चाहो तो उनसे पूछ लो।* (राधा और ललिता कृष्ण-कृष्ण कहती हुई दौडकर आती हैं और कृष्ण के चरणों मे लोट जाती है। तीनो नौजवान परस्पर काना-फूसी करते हुये मद हँसी हँसते है। राधा कृष्ण के सामने बैठ जाती है और उनकी ओर टकटकी लगाये देखती हुई उसकी आँखो से आँसू टपकने लगते है।)

राधा : *कृष्ण ! हमें कैसे भूल गए ?—मुझे कैसे भूल गए ?*

कृष्ण : (गद्‌गद होकर) *तुझे कैसे भूल सकता हूँ राधे ? अगर भूल जाता तो आज क्यों आता ? पेंद्या, सुबल, सुदामा, श्रीदामा, मधु मङ्गल, सारे गोप और गोपियाँ —किसी को भी मै नहीं भूला। तुम सब निरन्तर मेरे आस-पास छाये रहते थे। राजनीति मे उलझा हुआ था—नए नगर बसा रहा था। नए सिंहासन स्थापित कर रहा था। उन पर नए-नए राजाओं को आसीन*

करा रहा था—पर तुम सब लोग मेरी आँखों के सामने झूलते थे। मन तुम्हारी ओर खिंच रहा था—कहता, क्यों यह उथल-पुथल कर रहे हो कृष्ण? गोकुल जाओ--दूध-दही का रोजगार करो--मुरली बजाओ—नाचो-गाओ—रास रचाओ। यहाँ व्यर्थ यह ऊधम क्यो मचाते हो? घनिष्ठ मित्रों को छोड़-कर यहाँ अपने आसपास दुश्मन क्यों पैदा कर रहे हो? ये सब लोग स्वार्थी है। अपना मतलब गाठने के लिये तुम्हारे आसपास चक्कर काट रहे है। उनका स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर वे तुम्हें भूल जायेंगे और तुम अकेले रह जाओगे।" मेरे मनो देवता के इस कथन का एक-एक अक्षर आज सच निकला—इसीलिए मैं इस गोकुल मे आया हूँ।

राधा : खैर! देर से ही सही, पर आखिर आए तो। मैं लगातार तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी दरवाजे पर खडी हुई, पनघट पर! यमुना के तटपर! कालिया-दह के निकट। गोवर्धन पर्वत के नीचे खडी हुई! उस कुंजवन मे जहाँ शरद पूर्णिमा के दिन 'रास रचा। था तुम सब जगह निरन्तर दीख रहे थे पर हाथ नही लगते थे। आखो की पुतलियो के साथ नाचते थे, पर दृष्टि से ओझल हो गए थे। तुम्हारी वह मुरली लगातार कानो में गूँजती थी—"कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!"

कृष्ण : (उत्सुकता से) राधे, क्या मेरी वह मुरली तुझे मिली है?

राधा : हाँ! मिली है।

कृष्ण : कहाँ मिली ?

राधा : मथुरा के मार्ग पर। उस समय जब अक्रूर तुम्हें ले जा रहा था। उसने रथ हाँका—घोडे बिचक गये थे और उस गडबडी मे तुम्हारी वह मुरली—तुम्हारे अधर की साथिन—वहाँ से उडी और मेरे आँचल में आ गिरी।

कृष्ण . कहाँ है वह ?

ललिता : मत देना उसे, वह मुरली, राधा ! जन्म भर क्रूर कृष्ण ने हमें रुलाया—अब घडी भर इन्हे भी रोने दे।

पेंद्या . क्या सचमुच वह मुरली तुझे मिली है, राधा ?

राधा : झूठ क्यों बोलूँ ? यह मेरा अपना रहस्य है। अभी तक वह मैने किसी से नही कहा। सिर्फ ललिता ही जानती है उसे। अपनी उस अत्यन्त प्यारी बैरिन को मैंने अच्छी तरह छिपाकर रखा है—हृदय के निकट सम्हालकर रखा है, किसी को भी वह नही दिखाई। केवल एक बार ललिता ने उसे देखा था और उसके बाद मैने उसे अच्छी तरह छिपाकर रखा है। किसी को भी वह नहीं दीख सकती। (राधा के भाषण के दौरान मे वे तीनो नौजवान आपस मे कानाफूसी करते रहते है, अन्त मे एक का मुँह खुलता है।)

हेमन्त . देखो तो, बातें कैसी कर रही है जैसे सोलह वर्ष की युवती हो।

कृष्ण : क्या तू ने वह छिपाकर रखी है राधे ? हाँ । तो क्या

वह मुझे भी नही मिलेगी ? (चिढकर) अच्छा, देखता हूँ कैसे नहीं मिलेगी ?

राधा : मै समझ गई तुम क्या करोगे ? मै बड़ी हो गई हूँ अब ! बचपन की शरारतें अब भूल जाओ । मै लाग-लपट नही करने दूँगी तुम्हें ! (एक गहरी साँस लेकर) और अब इस झुर्रीदार देह को क्यो लगाते हो अपना वह सुन्दर हाथ ? अभी तक तुम सुन्दर दिखते हो !

पेंद्या : अब अधिक मत सता, राधा ! निकाल वह मुरली ?

राधा : ना-ना-बाबा ! क्या मै अपनी उस अत्यन्त प्यारी वैरिन को इतनी आसानी से अपने हाथ से निकल जाने दूँ ? मै अच्छी तरह बदला लूँगी उससे और उसके स्वामी से !

पेंद्या : क्या उसे खूब बजा-बजाकर ?

राधा : नहीं जी !

पेंद्या : फिर किस तरह ?

राधा : क्या ऐसी बात बताई जाती है ?

ललिता : क्यों बातें करती है इन उजड्ड मूर्खों से ? वे क्या जानें हमारे मर्म को ? उसे जानने के लिये स्त्री का हृदय चाहिए ?

पेंद्या : अच्छा-अच्छा भई ! हमारे पास नहीं है वह हृदय तो तुम्ही बताओ न हमे—क्या है वह तुम्हारा रहस्य ?

ललिता : ऐसे रहस्य क्या किसी दूसरे को बताये जाते हैं ?

पेद्या : फिर किसे बताए जाते हैं ? क्या कृष्ण को ?

राधा : उन्हें भी नहीं। कौन यह कृष्ण ? उन्हें कौन पहचानता है यहाँ। एक पके बालों वाला बूढ़ा यहाँ आ गया है और कहता है कि मैं कृष्ण हूँ

कृष्ण : पर तूने ही तो मुझे कृष्ण कहकर पुकारा था !

राधा : वह तो मैंने यूँ ही मजाक किया था !

केदार वाह री बुढिया, यह भी खूब मजाक था तेरा ? लो, देख लो इस बुढ़िया का मजाक ?

कृष्ण . अच्छा, तो तूने मजाक किया था ? झूठ बोलती है ? उस समय भी इसी तरह झूठ बोला करती थी। मुझे चकमे देती थी। अपनी सुध-बुध भूल जाती थी—मेरी मा की हमजोली तू—तू मुझ बालक को झासे देती थी ?

राधा : मैंने क्या झासा दिया रे तुम्हें ?

कृष्ण देखो, अब यह लडने पर उतारू हो गई। जब मनुष्य किसी बात को स्वीकार नहीं करना चाहता तो वह लडने पर आमादा हो जाता है। क्या तूने मुझे धोखा नहीं दिया ? अक्रूर के साथ मुझे क्यों भगा दिया था तूने ? झूठ क्यों बोली थी ? क्या तूने यह नहीं कहा था कि कस को मारकर जब मैं मथुरा का राजा बनूँगा तो तू मुझसे मिलने आएगी ?

राधा . तो मैंने इसमें झूठ क्या कहा था ? क्या तुम मथुरा का राजा बने ? सिंहासन पर तो बिठा दिया था

तुमने उग्रसेन को। और फिर आगे तुमने दौड़-धूप शुरू कर दी थी। तुम भाग रहे थे आगे-आगे और जरासंध तुम्हारे पीछे लग गया था। तुम गोमात तक भागे। तुमने द्वारका बसाई और उस नगरी का राजा बना दिया बलराम दादा को। तुम कहीं के भी राजा न बने। तो क्यों भगोडे, फिर मै क्यों आती तुमसे मिलने ?

कृष्ण : अरी, भागता नही तो मै क्या करता ? नाहक लडाई करके अपने आपसी झगडो के लिए क्या सारे नगर-वासियों का खून बहाता ? अकारण मनुष्य मारे जायें, यह मुझे पसन्द नहीं ।

राधा : फिर अर्जुन से क्यों कहा था लडने को ?

सुबल : हाँ। यही तो मै भी पूछना चाहता था।

कृष्ण : और यही मैं भी बताने वाला था । युद्ध से मुझे घृणा है। मैं नही चाहता कि कही भी कोई युद्ध हो। इसीलिये मै पाँडवों की तरफ से वकालत करने दुर्योधन के दरबार मे गया था। पाडव तैयार नहीं होते थे। पर जैसे-तैसे मैने उन्हें पाँच गाँव लेकर उन्ही पर संतोष मानने के लिये राजी किया था। परन्तु वह दुष्ट दुर्योधन पाच गाँव देने के लिये भी राजी नही हुआ। अन्त में लड़ाई हुई। सारे यादव कौरवों से जा मिले। लडने की खुजली जो थी न उन्हें। पाँडवों ने मुझे बुलाया । हाथ मे शस्त्र धारण न करने की मेरी प्रतिज्ञा थी। पर वह मित्र का कार्य था ! इसलिए

एक रास्ता निकाला और अर्जुन का रथ हाँकने का काम स्वीकार कर लिया। उसका सारथी बना…

सुबल : और फिर उसे जो गीता सुनाई उसका क्या ?

कृष्ण : यह तुमसे किसने कहा कि मैने अर्जुन को गीता सुनाई ?

सुबल : स्वय व्यास मुनि ने, जो यहाँ कथा कहने आये थे।

कृष्ण . अब व्यास मुनि को क्या कहूँ ? घमासान लडाई में कोई किसी का प्रवचन सुनता है । सुनाने वाला कह कैसे सकता है और सुनने वाला सुन कैसे सकता है ? क्या मेरे किसी को प्रवचन सुनाने से युद्ध रुक जाने वाला था ?

हेमन्त · क्यों ? तुमने यह क्यो नही कहा—'मै प्रवचन दे रहा हूँ—तुम लोग जरा रुक जाओ। मेरे अर्जुन के छक्के छूट गए है। उसे मै उपदेश सुनाने वाला हूँ और उपदेश देकर उसे युद्ध के लिये प्रवृत्त करने वाला हूँ। इसलिये हे वीरो, थोडी देर के लिये अपने शस्त्र रख दो। मै जब तक आज्ञा न दूँ, तब तक तुम लोग युद्ध आरम्भ न करना।' (हँसता है। उसके सब साथी भी हँसते है।) वह तो धर्मयुद्ध था न ? उसमें वे लोग कोई अधर्म कैसे करते ?

कृष्ण : सुनो। इस लडके ने बिल्कुल ठीक कहा। क्या मै ऐसा करता ? और युद्ध के जोश में क्या वे वीर, जिनकी भुजाएँ लडने के लिए फडक रही थीं, मेरा कोई उपदेश सुन लेते ?

पेंद्या : तो मतलब यह कि वैसी कोई बात तुमने नहीं कही थी ?

कृष्ण : बिलकुल नहीं । मै कैसे कह सकता था ? बात यह है कि जब ऋषि और मुनि संसार को कोई अपनी बात कहना चाहते है तो वे उसे किसी अधिकारी व्यक्ति के मुँह से कहलाते है । यह प्रथा बहुत पहले से चली आ रही है । इन लोगों ने शङ्कर और पार्वती के नाम पर क्या कुछ कम कहा है ? सुनो पेंद्या और सुनो सुबल, ऐसी बातों पर विश्वास नहीं रखना चाहिये । नाहक मुझे बदनाम न करो । ये ऋषि-मुनि महान पुरुष है । मै साफ-साफ यह कैसे कहूँ कि वे झूठ बोलते है । वे दुनिया भर में कहते-फिरते है, तुम लोग सुनते हो और फिर मेरी नाहक घुटन होती है ।

कुब्जा : अब मुझे समाधान हुआ । मुझे वह सच ही नहीं लगा था और राधा, तुझे ?

राधा : मैंने कुछ सुना ही न था ! किसी कथा-वथा में मै जाती ही कहाँ हूँ ? मै बूढ़ी हो गई हूँ—शरीर बिलकुल शिथिल हो गया है । मरने से पहले एक बार कृष्ण से मिलने के लिए प्राण धारण किए बैठी थी । मुझे ब्रह्म-ज्ञान की जरूरत नहीं । मेरे कृष्ण का नाम सारे ब्रह्मज्ञान से भी बडा है……

ललिता . क्या कृष्ण जैसा ही ?

कृष्ण . नहीं भई, मै बडा नहीं हूँ । मै तो एक साधारण मनुष्य हूँ । सेवा करना मेरा धर्म है । उसे मै निभा

रहा हूँ और दूसरों से निभवाता हूँ । ब्रह्मज्ञान की बातें तो भीष्म और द्रोणाचार्य ही करें······

ललिता : और स्त्री जाति को जीवन भर गुलाम बनाकर रखें। किस काम का है यह ब्रह्मज्ञान या तत्वज्ञान ? एक प्रत्यक्षदर्शी मनुष्य ने मुझसे कहा था कि चीर-हरण के समय जब दु शासन ने द्रौपदी की साडी को हाथ लगाया तब द्रौपदी ने दहाड मारकर पूछा--'क्या मै पुरुष की सपत्ति हूँ ।' तब तुम्हारे इस भीष्म ने ही उत्तर दिया था कि, 'हॉ, स्त्री पुरुष की संपत्ति है ।' बोलो कृष्ण, यह सच है न ?

कृष्ण . मै इन्कार कैसे करूँ ? वे राजनीतिज्ञ पुरुष थे और राजनीतिज्ञ लोग समय और प्रसङ्ग को देखकर निर्णय देते है ।

ललिता : परन्तु वह निर्णय अब जिन्दगी भर आडे आयेगा न स्त्री जाति के लिये !

राधा : छोड भी उन बातों को । हर एक अपने-अपने कर्म का फल भोगेगा । इतने बरसों के बाद हमें कृष्ण मिले हैं उनसे क्यो झगडने बैठी हो ?

ललिता · तो फिर क्या करें ?

राधा · उन्हें देखो—आँखें भरकर देखो । आँखों की राह से उन्हें हृदय में भर लो । ललिता, हमें उनका यह रूप नहीं देखना है । इस रूप को देखो और इसे देखने के बाद उनके पहिले स्वरूप की याद करो--उन लीलाओ को याद करो । फिर हम भी उस समय में

लौटकर जायें और छोटे बन जाएँ ! हाँ, अब तो देखो सब उनकी ओर । (उन तीन तरुण को छोड़-कर शेष सब लोग हाथ जोड़े हुये कृष्ण की ओर देखते है ।)

हेमन्त . क्यों जी केदार और क्यो जी सारङ्ग, तुमने हाथ नही जोडे ?

केदार : मै क्यों हाथ जोड़ूँ । मुझे क्या पता कि इन कृष्ण जी ने पहले क्या जौहर दिखाये थे ?

सारंग · इन बूढ़ों की गप्पों पर मेरा तनिक भी विश्वास नही । समय बदल गया है और उसके साथ ही दुनिया भी बदल गई है—दुनिया की भावनाएँ बदल गई हैं । मेरा विश्वास नहीं ऐसी ढोंगबाजी पर । देखो, देखो···

हेमन्त : क्या देखें ?

सारंग . देखो । सब की आँखों से किस तरह आँसुओ की धाराएँ बह रही है ? ये बूढे बडे ढोंगी मालूम होते है जो ? (एकदम जोर की गड़गडाहट होती है ।) यह काहे की आवाज है जी ?

हेमन्त : बादलों की ।

केदार : नही भाई ! आसमान तो बिलकुल साफ दिख रहा है । सच बताओ—यह काहे की आवाज है ?

(फिर जोर की गडगड़ाहट होती है । सब तरफ अंधेरा छा जाता है । सामने बैठे हुये लोग विलुप्त हो जाते है और कृष्ण की रास-लीला दिखाई देने लगती है । गोप और गोपियाँ रास-लीला में रत हैं । राधाकृष्ण के चारो ओर

चक्कर लगाते हुये नाच रहे है। देखते-देखते यह दृश्य गायब हो जाता है और फिर अन्धेरा छाकर प्रकाश आता है। इसके बाद फिर पहिले-जैसा ही सब दीखने लगता है।)

हेमन्त : *यह तो कोई जादू का खेल जान पडता है भाई।*

केदार : *यह क्या हुआ था जी?*

हेमन्त : *न जाने क्या हुआ? सब तरफ अन्धेरा हो गया था और कुछ सङ्गीत-सा सुनाई दिया।*

(नौजवानों को छोडकर बाकी सब—धन्य ह, कृष्ण धन्य हो! वह रास-लीला हमने फिर देखी। आँखें ठण्डी हुईं—हृदय शान्त हुआ—जीवन सार्थक हो गया।)

कृष्ण : *अब वह सब भूल जाओ!*

राधा : *उसे कैसे भुला सकते हैं! सारे जीवन मे यदि कोई बची है वह केवल यही है। आज वह सब कुछ फिर से देखा, बीच का समय क्षणभर के लिए जैसे विलुप्त हो गया था। बताओ क्या सचमुच तुम ही कृष्ण हो?*

कृष्ण : *तो क्या तुझे अभी भी शक है?*

राधा : *हाँ। शक है, मैं तुम्हें जानती हूँ बालकृष्ण के रूप में तुम्हारी साँवली सुन्दर सूरत—तुम्हारा अलबेलापन—मेरे मुरली वाले—वह मुरली तुम्हारे पास नहीं—तुम्हारे ओठों से नही लगी है। फिर तुम्हें पहचानती कैसे?*

कृष्ण : पर मेरी मुरली तूने ही तो अपने पास छिपाकर रखी है न ? (राधा चुप रहती है ।) बोल-बोल ! तूने ही छिपाकर रखी है न ?

पेद्या . अरी ओ चोट्टी ! मेरे कृष्ण की मुरली लाकर रख दे यहाँ । लौटा दे उसे—दे उसे !

राधा . क्यों दूँ ? क्या वह जानते थे कि उनकी मुरली मेरे पास है ? क्या उन्हें यह भी पता था कि उनकी मुरली गुम हो गई है ? क्या यह भी कभी उनके ध्यान में आया था कि वह मुरली उनकी सर्वस्व है—यदि वह उनके हाथ में न होगी तो कोई भी उन्हें पहचानेगा नही ?

कृष्ण : मै पूर्ण रूप से अपराधी हूँ, राधे । मेरी मुरली खो गई—मै नृत्य और सङ्गीत भूल गया और इसके परिणामस्वरूप राजनीति के धक्के बर्दाश्त किए । उस राजनीति के कारण नाहक मेरी बदनामी हुई । मैं किसी का भी पक्षपाती न था—पक्षपाती अगर था तो केवल सत्य का ! पर लोग मुझे पॉडवों का पक्षपाती समझने लगे । जब लडाई होने का निश्चय हुआ तब दुर्योधन मुझसे मदद माँगने आया और मैने सारी यादव सेना उसे दे दी··· ···

सुबल : और सेनापति पाडवों की तरफ चलागया··· ··

पेद्या : और तुम तो सत्य के पक्षपाती थे न ? कौन है जी ये पाडव ? क्या औरस बेटे तुम भी थे पाडु के ? उनका पक्ष लेकर लड रहे थे तुम ?

कृष्ण . अरे भई वे सज्जन थे इसीलिए मैने उनका पक्ष लिया। मै पाडवो का पक्षपाती नहीं था, मै पक्षपाती था सज्जनों का! कौरव धृतराष्ट्र के औरस बेटे थे यह सच है। पर वे दुष्ट थे, आतताई थे, उद्दंड थे। फिर भी उन्हें समझाने का मैंने प्रयत्न किया। जब वे किसी भी प्रकार के समझौते के लिए तैयार न हुए तो मुझे अलग हो जाना पडा। जब बात पराकाष्ठा को पहुँच गई, तो मै पीछे हट गया। पर मैने पाडवो को लडने के लिए प्रवृत्त नही किया।

राधा : अब छोडो तुम्हारी राजनीति की ये बातें—काफी हो गई वे। जब पुरानी बातो पर ताने कसे जाते है तो मै ऊब उठती हूँ। मैं एक भावुक और श्रद्धालु स्त्री हूँ, अन्य मनुष्यों की तरह ही तुम भी एक मनुष्य हो। पर तुम्हें मै ईश्वर मानती हूँ। निर्दोष मनुष्य ही तो ईश्वर होता है।

कृष्ण (हँसकर) अरी पर सभी दोष है मुझमें।

राधा सब रङ्गों को मिला देने से जिस तरह सफेद रङ्ग बन जाता है उसी तरह तुम्हारे सारे दोषों यानी रङ्गों को एकत्रित करने से मेरी दृष्टि मे तुम पूर्ण रूप से निर्दोष दीखते हो! प्रत्यक्ष ईश्वर दीखते हो! किसने देखा है ईश्वर को? ईश्वर को मनुष्यों में ही खोजना पडता है। मनुष्यों मे ही कहीं होता है वह—हमें दीखता नही। किसी समय तीसरा नेत्र खुल जाता है—क्षणभर के लिए कुछ चमक जाता है—उस झलक के दर्शन होते है और फिर लगता है कि यह

मनुष्य नहीं—यह ईश्वर है—यही ईश्वर है। सङ्गीत की तरह मजुल, नूपुरों की तरह झंकृत करने वाला, कोमल, देखने वाले को अपनी दृष्टि की तरह दिखाई देने वाला नट······

पेद्या : अब यह बकवास बंद कर। पहिले वह मुरली निकाल बाहर। निकाल—जल्दी निकाल। मैं उसे देखना चाहता हूँ—कृष्ण के ओठों से लगी हुई उसे देखना चाहता हूँ।

कुब्जा : और मैं भी देखना चाहती हूँ—सुनना चाहती हूँ। मैंने उसे कभी नहीं सुना। इसीलिए एक बार उसे सुनना चाहती हूँ।

ललिता : उन स्वरो को सुनने के लिए जन्म-जन्मातर का भाग्य चाहिये। उसके स्वर सुनकर देव भी पशुओं का रूप धारण कर स्वर्ग छोड़कर यहाँ आते थे। हम तो सारी सुध-बुध ही भूल जाती थी—देह को भूल जाती थी —सिर्फ कान भर रहते थे—सिर्फ कान! सिर्फ हृदय! बाकी कुछ नहीं! सब कुछ शून्य! उस वेणुनाद में हमारी सारी चेतना विलुप्त हो जाती थी—और सारा जगत भी! निकाल वह मुरल —निकाल। मैं भी उसे देखना चाहती हूँ। (राधा पीछे हटती है। अपने वक्ष-स्थल के पास हाथ ले जाती है।)

सब : (उन तीन नौजवानो को छोडकर)—निकाल-निकाल! निकाल वह मुरली बाहर। फिर इस गोकुल को झूम उठने दे उसके स्वर से! स्थान और काल के परे जाने

दे हमें—अद्वैत में—अन्त में चित्सागर की तरङ्गो मे डुबकियाँ लेने दे हमें।

राधा : क्या होगा, जानते हो ? वह मुरली अगर पुनः बजी तो क्या होगा, यह जानते हो ? कृष्ण की तरफ गौर से देखकर बताओ न ? क्या होगा ?

कृष्ण मैं कैसे बताऊँ ? मुझे कैसा लगेगा इसकी कल्पना कर रहा हूँ मै ? तुम सब बोल रहे थे और मै यह सोच रहा था कि मुझे कैसा लगेगा ? अगर मै अपनी उस प्रिय सखी को पुनः अपने ओठो से लगाऊँ तो मेरा क्या होगा ?

राधा तुम अपनी ही बात सोचते हो। बड़े स्वार्थी हो तुम !

कृष्ण : हाँ राधे, मै सचमुच स्वार्थी हूँ। बडा भारी स्वार्थ है मेरा। सारे विश्व के स्वार्थ में समाया हुआ है मेरा स्वार्थ। कोई परमार्थ कहते है उसे। उसे क्या कहूँ यह कम-से-कम मै तो नही समझ पाता। मूढ़ हो गया हूँ मैं—अचल हो गया हूँ, ऐसा लगता है। अब कल्पना काफी हो चुकी। प्रत्यक्ष ही अनुभव करने दे मुझे !

राधा . देखो जी, तुम सब बूढे और नौजवान—यह देखो (अपने वक्षस्थल से एक बालिश्त-भर लम्बी मुरली निकालती है।) यह देखो वह मुरली।

कृष्ण : ला-ला—दे वह इधर !······

राधा : (पीछे हटकर) ऐसे नहीं मिलेगी वह। तू ने इसकी

उपेक्षा की है—इसे भूल गया है तू—मै इसे हृदय से लगाई रही । वह लगातार गाती थी—बोलती थी—हृदय से प्रेमालाप करती थी—मुझसे कहती थी—राधे, अब फिर कभी न देना मुझे कृष्ण के हाथ में (मुरली को सामने पकडकर जैसे उसी से कुछ कह रही है।) है न जी ? यही तूने कहा था न ? हे कृष्णाधार चुंबके, हे वशनलिके, बता अब मै क्या करूँ ? दे दूँ क्या तुझे उस छलिया के हाथ मे ? बता न मुझे ? (पुनः मुरली को हृदय से चिपका लेती है।)

कृष्ण : अब और अधिक न सता, राधे ! मेरे प्राण व्याकुल हो रहे है—ओंठों मे आ रहे है मेरे प्राण—मेरे पंच प्राणो को उस मुरली के मुँह मे बह जाने दे । ला-ला-दे-दे-दे-दे वह मुझे—(कृष्ण और राधा आपस मे छीना-झपटी करते है। कृष्ण उससे मुरली छीनने की कोशिश करते है। वह अपने आप को बचाती है। कृष्ण उससे लाग-लपट करने लगते हैं।)

हेमन्त : अजी चलो जी, यह क्या देख रहे हो ? ये सब पुराने नाटक है। हमें ये पसन्द नहीं ! चलो, हम लोग चलें। हमारी गायें घर पहुँच गई होंगी। (कहकर अपने दोनो साथियो को खींचकर ले जाता है।)

कृष्ण : अब अधिक न सता राधे । मै तेरे पैरों पड़ता हूँ ।

राधा : मै ऐसी मुँह देखी बात नही चाहती । देख, ये मैने अपने पैर आगे बढा दिए, पड़ो मेरे पैर ।

(कृष्ण राधा के पैर छूने के लिये झुकते है तो राधा उन्हें दोनो हाथो से पकड़कर उठा लेती है और स्वय कृष्ण के पेरो पड़ती है ।)

राधा . (उसी तरह घुटने टेके हुये) *यह ले । इतने बरसो तक हृदय से लगाकर रखी थी, किसी को भी नही दिखाई —आज सबने देख ली तुमने देख ली—तुमने देख ली इससे मै हर्ष-विभोर हो गई । सबसे पहिले तुमने उसे देखा । अब ये सब उसे देखेंगे—नही, उसके स्वर सुनेंगे—मै तब कहाँ रहूँगी कौन जाने ? यह लो अपनी मुरली—सुरक्षित रखी हुई तुम्हारी यह धरोहर सँभाल लो—इसे ।*

(कृष्ण हाथ मे मुरली लेते है । उसकी ओर देखते हुये राधा उनके चरणो पर सिर रख देती है। सब तटस्थ होकर देखते रहते है । कृष्ण मुरली अपने ओठो के पास ले जाते है ।)

[पर्दा गिरता है ।]

●

२

नया वैरागी

[नरसू काका बीडी के कश के खीचते हुये बैठे है। भीतर से किसी के गाने की आवाज सुनाई पड रही है। यह गाना सुनते हुये उसके कोई-कोई शब्द उन्हे पसन्द न होने से वे गुस्से-गुस्से मे उन शब्दों को स्वयं कहते है। गाना समाप्त होने से कुछ पहिले सुधा प्रवेश करती है। इन दोनो की थोड़ी बातचीत हो जाने पर गाना बन्द हो जाता है।]

नरसू : *किसे उठ रही है यह टीस, सुधा? मुझे लगा कि तू ही गा रही है। आ गयी? कहाँ गयी थी? यह कौन गा रहा है?*

सुधा : *आप भी खूब है, काका! घर के आदमी की आवाज भी नहीं पहचान पाते। सुमन जो गा रही है!*

नरसू : अच्छा, सुमन गा रही है ? (तनिक हँसकर) सुमन गा रही है ? तू नहीं गा रही थी ? क्या हो गया है सुमन को ? क्यों गा रही है वह ?

सुधा : अब आप से क्या कहा जाए, काका ? पूछते हैं—क्यों गा रही है ? आपने तो बिल्कुल हद ही कर दी। कुछ होने से ही क्या कोई गाता है ?

नरसू : अरी, हम ठहरे पुराने जमाने के आदमी—पुराने ढङ्ग से देखते हैं। आदमी कब गाया करता है ? या तो कहीं भजन होते हों, या कहीं गाने की महफिल जमी हो या कोई गाना सीखता हो। पर तुम आजकल की लडकियाँ खिडकी के पास कलरव करने वाली चिडियों की तरह बे-वक्त ही कोई भी ऊटपटाग गीत गाकर, हम लोगो को तंग कर डालती हो। अब तुम लोगों से क्या कहा जाए ? अरे हाँ, यह तो बता, तू गयी कहाँ थी ?

सुधा . गयी थी हवा खाने चौपाटी पर। (भीतर गाया जा रहा गाना बन्द हो जाता है।)

नरसू : उसका गाना बन्द हो गया शायद। हाँ, तो तू चौपाटी पर गयी थी ? क्यों, यही न ? अगर चौपाटी पर न जाओ, तो शायद हवा नहीं मिलती। हवा खाने जाते हैं वहाँ। यहाँ खिडकियों में से शायद हवा नहीं आती। यहाँ से तो समुद्र भी नजर आता है। अमीर की बेटियाँ हो न तुम ? नौकर-चाकर हैं। रसोईया है इसलिए हवा खाने जाना पड़ता है तुम्हें। (सुमन आती है।) अच्छा, तू आ गयी, सुमन ! तू ही

गा रही थी क्या ? तू नहीं गयी हवा खाने को। इन लडकियो से तो अच्छी तरह कसकर काम लेना चाहिए। क्या जरूरत है इतने नौकरों की ? क्यों सुमन, क्या सिर्फ गाना ही आता है तुझे ? बोलना नहीं आता ?

सुमन : क्या बोलूँ ?

सुधा : बोल कुछ भी ! इतने सालों के बाद कोकण से काका आए हैं। उनके पास बैठकर उनसे बातें करना छोड कौन से गाने गा रही थी, री ?

सुमन : क्या बातें करूँ ?

नरसू : मै यह नहीं कह रहा हूँ कि मेरे पास बैठकर मुझ से बातें कर। एक तो मैं हूँ बूढा और फिर कोकण का रहने वाला—यह बंबई भी कोकण ही है, यह कैसे भूल जाती हो, लडकियों ? कोकण में ही था—कोकण मे ही आया हूँ परन्तु इस बंबई में का कोकण गायब हो गयाहै—बबई अब इंग्लैंड हो गई है। यह मुझे अभी तक मालूम नही था—और वह वैरागी ? कहाँ चल दिया वह ? क्या वह भी हवा खाने गया है ?

सुधा : क्या आप विजय के बारे में पूछ रहे है, काका ? क्या किसी को भी पता रहता है कि वह कहाँ जाता है ?

नरसू : याने ? क्या वह किसी से पूछकर नही जाता ?

सुधा · पूछेगा किससे ? यहाँ रहता कौन है ? पिता जी अभी तक कहाँ लौटते है दफ्तर से ? क्या रसोईया से पूछकर जाए ?

नरसू : *कितना बडा बंगला है ! मै आ गया हूँ, इसलिए अच्छा है। यदि घर के नौकर ही यहाँ का सारा सामान ढोकर ले जाएँ तो भी किसी को पता न चलेगा। वह चला जाता है दफ्तर, तू चल देती है कालेज, सुमन चल देती है--कहाँ जाती है सुमन ?*

सुमन . *सगीत विद्यालय में ।*

नरसू . *सुबह खाना खाकर जाती है और शाम को दिन डूबने के बाद लौटती है। तो क्या इतनी देर तक सगीत विद्यालय में ही बैठी रहती है ? क्या मैं इस पर बिश्वास करूँगा ?*

सुधा *झूठ क्यों बोलेगी वह ? वह वहाँ पढ़ने को नहीं जाती पढ़ाने को जाती है ।*

नरसू *अच्छा, यह बात है ? पढाने जाती है ! क्या तनख्वाह मिलती है इसे ?*

सुधा . *तनख्वाह किस बात की ?*

नरसू *तू चुप रह । क्या उसके पास बोलने को मुँह नहीं ?*

सुधा : *यह कोई आवश्यक नहीं कि वही बोले। कोई भी जवाब दे सकता है। आपको तो प्रश्न का उत्तर मिल जाना चाहिए, बस ! उसे तनख्वाह कुछ नहीं मिलती। सेवा के रूप म वह यह कार्य कर रही है ।*

नरसू : *क्यों सुमन, क्या यह सच है ?*

सुमन . *जी हाँ ।*

नरसू *हाँ कहती है ? आजकल सेवा करने के बडे ढकोसले*

शुरू हो गए है—याने सेवा करने वालों के और दूसरो से अपनी सेवा करा लेने वालो के। कौन किसकी क्या सेवा करता है, सो भगवान जानें !

सुधा : मेरे सामने आप ऐसी कोई बात न कहा करें। मै यह बर्दाश्त नही कर सकती।

नरसू : तुझसे कौन कह रहा है ? तू क्यों इतनी उखड़ती है ?

सुधा : उससे कहा क्या और मुझसे कहा क्या—दोनों एक ही बात है। ऐसी कोई नासमझी की राय आप प्रकट करेंगे तो वह दोनों को न भायगी। बोल न सुमन। तेरी क्यो घिग्घी बध गयी ?

सुमन : काका के आगे मै क्या बोलूँ ?

नरसू : अच्छा, अच्छा ! मत बोल भई ! मैं समझ गया। चलने दो तुम्हारी सेवा ! मेरा क्या ? चार दिन के लिए आया हूँ। नाहक क्यों किसी से बुराई लूँ ? हॅश्र ! और उस उजड्ड का क्या हाल है ? क्या वह भी कर रहा है कोई सेवा ? वह बयालीस के आदोलन में शामिल था। भूमिसपाट हो गया था।

सुधा : भूमिसपाट नहीं, काका ? भूमिगत—अंडर ग्राउंड।

नरसू : क्या भूमिसपाट और क्या भूमिगत—दोनो एक ही हैं। उस वक्त दाढ़ी रख ली थी बेटाजी ने। एक बार हमारे गाव मे आया था। एक कमरे में चौदह दिन छिपा बैठा था। जब काली वर्दी वाले जाँच के लिए आये तो भागा पीछे के दरवाजे से ! तू क्यो

क्रोध से भर रही है, सुधा ? मैं उसे दोष नही दे रहा हूँ—बदनाम नहीं कर रहा हूँ। मेरा कहना इतना ही है कि उस समय दाढी रखना ठीक था। वह वक्त ही वैसा था। पर अब उसे दाढ़ी रखने की क्या जरूरत ? अभी तक वह दाढी क्यो रखे हुए है ?

सुधा : इस समय भी इसका एक कारण हो गया है।

नरसू : क्या कारण हो गया है ?—तू कहाँ जा रही है, सुमन ?

सुमन : मैं इन बातों को नहीं समझती। मै जाती हूँ। (जाती है।)

नरसू : वह क्यो चली गई ?

सुधा : वह कोई यूँ ही नही चली गई ? उसके जाने का भी एक कारण है। वह आप नहीं समझ पायेंगे काका। वैसे भी वह कम ही बोलती है—बोलने से गाना ही अधिक पसंद करती है।

नरसू : अच्छा, अच्छा ! रहने दे ! तेरी इच्छा न हो तो न बता। पर उसने जो दाढ़ी बढाई है—

सुधा : उसका कारण बताने में कोई हर्ज नहीं। बात यह हुई—लीजिये, वह खुद ही आ गया ! (विजय आता है।)

विजय : क्या मेरी ही बातें हो रही थीं ? तो फिर रुक क्यों गईं ? बता दे न—जो बताना हो वह सब बता दे। सारी दुनिया की बदनामी को हजम कर डाला है मैंने। मैं किसी से भी नहीं डरता। लाठियो से नहीं

डरा—कोडों से नहीं डरा, बंदूक की गोलियों से भी नही डरा, तो क्या तेरे मुंह से निकले फुस-फुसे शब्दो की मार से डर जाऊँगा ?

नरसू : अर-अर, जरा शान्त हो, भई ! मैं ही इससे पूछ रहा था—पूछता था कि सन बयालीस में तूने दाढी रखी थी सो ठीक था, पर वह अभी तक क्यो है ?

विजय : यह पूछने वाले आप कौन होते है ?

नरसू : अरे बाबा, मै तेरा काका जो हूँ।

विजय · मै काका से नही डरता और न बाप से डरता हूँ । मै आजाद हूँ । मुझे किसी की परवाह नही···

सुधा : ऐ दादा, ध्यान है किससे बातें कर रहे हो ? कितने सालों बाद आज काका हमारे घर आए है···

विजय : किसने कहा था उन से कि वे हमारे घर आएं ? उनके बिना हमारा कोई काम नही रुक गया था यहाँ ?

नरसू : क्यों आपे से बाहर हो रहा है, रे ? तेरे बाप ने बुलाया था इसलिए आया हूँ। कई बरसों से बुला रहा था वह मुझे – मै आया हूँ उसके घर—ऐसा भी कह देता कि तेरे घर नही आया । पर इतने से ही तेरा पारा चढ जाएगा इसलिये जबान तक आये हुये इन शब्दों को फिर से निगले लेता हूँ। नाहक मै क्यों किसी की

बुरी लूँ ? यही पूछ रहा था कि अभी तक तूने दाढ़ी क्यों रखी है ?

विजय : मैंने अगर दाढ़ी रखी है तो इसमें बिगडा क्या ? मैं चाहे दाढ़ी रखूँ, चाहे चोटी रखूँ अथवा चोटी और दाढ़ी दोनों का मुडन कर डालूँ । इससे मुझे कौन रोक सकता है ?

नरसू . अ बाबा, तेरे जी में आवे सो कर । मैंने सिर्फ इतना ही पूछा था कि यह दाढ़ी क्यों रखी है ?

सुधा : बताओ न अब । रोज तो वैराग्य की बडी लम्बी-लम्बी बातें करते हो—अब क्यों मुँह बन्द है ?

नरसू : क्या इसे वैराग्य हो गया है—क्यों ?

सुधा : हाँ । वैराग्य हो गया है । क्यों हुआ है यह वही बतायेगा ।

नरसू : बता विजय, इस तरुणाई मे तुझे वैराग्य क्यों हुआ ?

विजय : वैराग्य की भावना किस प्रकार प्रादुर्भूत होती है यह मेरी अपेक्षा आप ही अधिक अच्छी तरह से बता सकते हैं ।

नरसू : अरे भई, तेरी और मेरी व्याख्याएँ ठीक से मेल नही खाएँगी । पहले मुझे यह तो मालूम हो कि इस विषय में तू क्या कहना चाहता है । बता, तुझे क्यों वैराग्य हुआ ?

सुधा वह देखिये काका, इसके वैराग्य का कारण—वह देखिये

जो सामने से चली आ रही है (जया आती है।) आओ जया, काका, ये हैं जया जी। और जया, ये हैं हमारे नरसू काका।

जया : वाह, आप तो बिल्कुल साहबी ढङ्ग से परिचय करा रही है! नमस्ते काका जी।

नरसू : नमस्ते! अब आगे क्या कहूँ? क्या विवाह हो गया है तेरा? अगर हो गया है तो सौभाग्यवती भव कहता हूँ।

सुधा : और अगर विवाह न हुआ हो तो?

नरसू : तो यह आशीर्वाद देता हूँ कि विवाह जल्द हो।

सुधा : पर यह आशीर्वाद उसे नहीं भायगा, काका! क्योंकि उसे भी वैराग्य हो गया है।

नरसू : अच्छा तो यह सारा मामला इस प्रकार है?

सुधा : हाँ, यही बात है और इसीलिये यह दाढी बढाई गयी है!

विजय : सुधा!

जया : सुधा!

नरसू : अरे भई, उसे क्यों नाहक डाट रहे हो। मै हूँ बूढा! जरा-सी टोह पाते ही, अपनी अक्ल से, बात की तह तक पहुँच जाता हूँ। मै अब सब समझ गया। हाँ, तो कौन है यह जया?

सुधा : यह भी थी बयालीस के आन्दोलन मे। आजकल एक कालेज मे प्रोफेसर है।

नरसू : अरे वाह, तो हमारी सखू को दिखाना चाहिये यह लडकी। इतनी छोटी उम्र मे यह प्रोफेसर हो गई ! यहाँ तो एक हमारी सखू है जो अभी तक डी-ओ-जी-कैट, कैट याने हाथी—यही रट रही है। कहाँ गयी है सखू ?—अरे, यह घर है या क्या है ? यहाँ तो किसी का कोई पता ही नहीं चलता। कोकण से आये अभी चार दिन भी नही हुए उसे और इतने में ही वह बम्बई वाली हो गयी।

सुधा : वह गई है नन्दू के साथ।

नरसू : नन्दू के साथ ? कौन नन्दू ? क्या वही आवारा लडका जो कभी-कभी यहाँ आया करता है ? यह छोकरी भी खूब है, भई! अरे देखो—देखो कहाँ चल दी है वह ? —और क्यों रे, तुम क्यों खामोश हो गये ? कौन हैं यह—हाँ, इसका नाम जया ही है न ? यह तो एक बडी प्रोफेसर है। इसे मैं यदि जया ही कहूँ तो नाराज तो न होगी यह ?

जया : आप मुझे जया ही कहिए, काका जी। कुछ भी हो, आखिर आप बुजुर्ग हैं। मेरे घर कोई बुजुर्ग नही। अपना कोई बुजुर्ग हो इसलिये मैं तडपती रहती हूँ—

सुधा : सुनो विजय दादा, यह क्या कह रही है ?

विजय : सुन लिया। मै यह सब समझता हूँ। याद रखना मैं मर्द हूँ। मुझे ऐसी ढोंगबाजी नही आती और मुझे वह पसन्द भी नही। एक बूढा दिख गया कोकण

का, तो उस पर जादू करना चाह रही है। पर कोकण के बूढे कैसे दुष्ट और नटखट होते हैं इसका अभी उसे पता नहीं है।

जया : ढोंगी कौन है यह काका जी को आप-ही-आप मालूम हो जायेगा। ढोंग करना होता तो क्यों अभी तक ऐसी बनी रहती ?

विजय : तो क्यों बनी रहीं ऐसी ?

सुधा : अरे, तुम तो उससे बोलने लगे, दादा ? तुमने उससे कभी बात न करने की प्रतिज्ञा की थी न ?

विजय : मैने झाककर भी देखा है उसकी तरफ ?

सुधा : देखने की क्या बात है ? तुमने तो सीधी-सीधी उससे बातें की हैं।

नरसू : अरी तू चुप रह, सुधा। जया को बोलने दे और विजय को भी। भगवान ने मुझे थोडी-सी अक्ल दी है। तू बोल उससे, जया। और विजय, तू भी बोल जया से।

विजय : प्राण भले ही चले जाएँ, पर उससे मै एक शब्द भी नही बोलूँगा।

नरसू : पर अभी तो तू बोला था न ?

विजय : वह तो मै तुम से कह रहा था। इससे ? और मैं ? और बोलूँगा ? छोड दीजिये यह आशा।

नरसू : तो फिर मुझसे बोल।

विजय : तुमसे ? तुम क्या खाक समझोगे इस विषय में ?

नरसू : इस विषय मे याने ? किस विषय में ?

विजय : यह भी पूछना पडता है तुम्हें !

नरसू : यह क्या कह रहा है, री सुधा ?

सुधा : बात यह है कि ये नए जमाने की नयी परियाँ हैं । आपने कभी प्रेम किया था क्या, काका ?

नरसू . प्रेम करना याने ? क्या करना री ?

सुधा . अब यही देख लीजिये । जब आप यही नहीं समझते हैं कि प्रेम करना क्या होता है, तब प्रेम-भंग क्या होता है यह आपके दिमाग में कैसे आएगा ?

नरसू : सच कहता हूॅ—मै यह सब कुछ नही जानता । प्रेम कब करते हैं—बता न मुझे ?—तू नहीं—जया, तू बता !

जया : क्या प्रेम, और क्या प्रेम-भग दोनों ढोग है, काका जी । भोली-बावली लडकियों को धोखा देने के लिए धूर्त्तों द्वारा गढे गए शब्द है ये । बात यह है, काका जी कि अब पुराने जमाने की बात नही रही । विवाह से पहिले ही, कोई दो—याने लडका और लडकी—एक दूसरे से परिचय कर लेते है । कभी उन दोनो का विवाह हो जाता है और कभी नही होता है । परन्तु इस परिचय के बाद से विवाह होते तक, उन दोनों के बीच जो कुछ चलता रहता है, उसे कहते है—प्रेम ।

नरसू · और विवाह हो जाने के बाद ?

सुधा : *विवाह के बाद सब समाप्त ।*

जया : *तुम चुप रहो, सुधा । विवाह होने के बाद* (रुककर)—*विवाह होने के बाद फिर प्रेम का क्या होता है यह विवाह हुए बिना मालूम नहीं होता और मेरा अभी विवाह नहीं हुआ है ।*

नरसू : अरी, पर तेरी कुछ सहेलियों का विवाह तो हो चुका होगा । वे क्या कहती है इस मामले में ?

जया · *विवाह होने के बाद हर व्यक्ति के लिए यह एक गुप्त बात हो जाती है । फिर इस विषय मे कोई कुछ नहीं बताता । हाँ, यह जरूर सच है कि विवाह से पहिले वे जिस तरह एक दूसरे के आसपास चक्कर काटा करते है, वैसे विवाह होने के बाद विशेष काटते नहीं दिखाई देते ।*

विजय : *यह क्या हो रहा है ? प्रेम के समान पवित्र विषय की यह कैसी विडम्बना हो रही है ?*

सुधा : *क्या तुमसे यह नही सुना जाता ? क्यों नहीं सुना जाता ? क्या यह विडम्बना है ? यह विडम्बना नही, विश्लेषण है यह ।*

नरसू · *अरे बाप रे, यह क्या कहा तू ने ? अपने पूरे जीवन में यह शब्द मैंने कभी नहीं सुना था ।*

जया . *यह शब्द बिल्कुल ठीक है, काका जी । यह संस्कृत शब्द है । मामूली हिन्दी मे इसे हम छान-बीन कह सकते है ।*

सुधा . *और चाहें तो बाल की खाल निकालना भी कह सकते है ।*

विजय अब तुम लोग यहाँ बैठे-बैठे निकालते रहो बाल की खाल। मुझे यह विडम्बना पसन्द नही।

सुधा . तो फिर चल दो यहाँ से।

विजय : मै तो जा ही रहा हूँ। तुझे कहने की जरूरत नही कि मै चल दूँ। मै जाना ही चाह रहा था। मै जा रहा हूँ, इसलिए कि मै स्वय जाना चाहता हूँ। तेरे कहने से नही जा रहा हूँ। समझी? (जाता है।)

(सुधा ठहाका मारकर हँसती है।)

नरसू हँसती क्यों है, सुधा? अरी, वह नाराज होकर गया है न? मेरे कारण किसी को नाराज-वाराज न होना चाहिये। चार दिन के लिये आया हूँ यहाँ। कोई यह न कहे कि मेरे आने से घर में झगडा हो गया।

जया . कोई झगडा नही होगा, काका जी। मै उन्हें अच्छी तरह पहचानती हूँ। वे एक नम्बर के ढोंगी हैं—

नरसू : क्या तू ही यह कह रही है?

जया : हाँ-हाँ। मै ही कहती हूँ।

नरसू · पर उसका और तेरा विवाह तो जम गया था न?

जया हाँ। जम गया था।

नरसू . फिर अब क्यों भंग हो गया?

जया : वही कहते है ऐसा।

नरसू : मतलब ? क्या तू नही कहती ऐसा ? अभी तक आशा बनी है तुझे ?

जया : आशा नही । विश्वास है मुझे ।

सुधा : सुन लीजिये काका । अब तो विश्वास हुआ आप को ?

नरसू . यहाँ तो एक-से-एक अजीब बात ही सुनता हूँ, भई । अब पता चलता है कि देहात मे रहकर कितने अज्ञानी रहे हम लोग ?

जया : पर आप सुखी तो रहे न ? ऐसे सिद्धान्तों के झगडे तो नही होते वहाँ ? अब आप की सखू को ही देखिये —यहाँ आप के साथ आई है । कल नन्दू के साथ मली थी मुझसे—

नरसू : कल ? याने ? क्या कल भी गयी थी वह उस आवारा के साथ ?

सुधा : यह बंबई है, काका । बबई समझे ? वह भी अब प्रेम समझने लगी है और वह भी अप प्रेम करने लगेगी ।

नरसू : और क्या तूने भी प्रेम करना शुरू कर दिया है ?

सुधा : प्रेम करने की अभी उम्र ही कहाँ हुई है मेरी ? अभी तो देख रही हूँ—सीख रही हूँ—सबक ले रही हूँ । किसका दाँव ठीक पडता है—किसका गलत पडता है । यह सब फिलहाल ठीक से देखकर, ध्यान में रख रही हूँ । जब प्रेम का मौका आवे तो मेरा दाँव,

ठीक पडना चाहिए । जया की तरह उल्टे-सीधे पासे पडने से मेरा काम नही चलेगा ।

नरसू : अच्छा हुआ जो मै बूढ़ा हो गया । जवान होता तो मेरी फजीहत ही हो जाती—अरे, पर सखू गयी कहाँ ? कही नन्दू के साथ भाग तो नहीं गई ? बेचारी कोकण की भोली-भाली लडकी है, और नन्दू है बंबई का छटा हुआ तरुण—कब क्या हो जाये, कौन कह सकता है ?

जया : कोकण की भले ही हो, पर वह है तो आखिर स्त्री। सुशिक्षित होती तो फंस भी जाती । मुझे उसके बारे में कोई आशंका नही । मैंने कल उसे जाँच लिया है । बडी पक्की है वह ।

नरसू : तू कह रही है इसलिए निश्चिन्त रहता हूँ । पर यहाँ का एक-एक झमेला देखकर मेरे छक्के छूट जाते है । हम देहाती लोग बदनामी से बहुत डरते है । अगर गाँव वालो को ऐसी किसी बात का पता चल जाए तो हम उन्हें मुँह नही दिखा सकेंगे । हमें आत्म-हत्या ही कर लेनी होगी ।

सुधा इतना क्यों डर रहे हैं आप, काका ? मान लीजिए—सखू नन्दू के साथ भाग ही गयी—सुन तो लीजिये—तो क्या अपने-आप ही आप का भार नहीं उतर जाएगा ? उसके लिये आप वर खोज रहे हैं न ? अगर वह अपना वर स्वय खोज ले, तो क्या आपकी उतनी ही जिम्मेवारी कम नहीं हो जाएगी ?—घबडाइये नही—लो, यह आ गयी सखू (सखू आती

है।) आ गई ? (नन्दू आता है।) लीजिये यह नन्दू भी आ गया।

नरसू : आ गई ? कहाँ गई थी ? इस नन्दू के साथ क्यों गई थी ? क्या कोई बुजुर्ग था तेरे साथ ?

सखू : घर मे बुजुर्ग है कौन जो हमारे साथ जाता ? चाचा जी दफ्तर चले जाते हैं। आप अपनी यह कुर्सी छोडने को तैयार नही। सुधा चल देती है कालेज। आज यही खाली थे। तो इन्हीं के साथ चली गई।

नरसू : यह तो हुई आज की बात—और कल ? कल भी क्या यह खाली था ?

नंदू : मैने आजकल छुट्टी ले ली है।

सुधा : क्या हमेशा के लिये ?

नंदू : हमेशा के लिये छुट्टी लेकर खाऊँगा क्या ? मेरी छुट्टी बकाया थी। साल खत्म हो रहा है—अगर न लेता तो सारी छुट्टी यूँ ही चली जाती। यह आई है कोकण से—इसके लिए यहाँ कोई साथी नहीं—मैने छुट्टी माँगी—मुझे मिल गई—

जया : कितने दिन की छुट्टी ली है ?

नंदू : फिलहाल तो एक सप्ताह की ली है। अगर यह कही और रह गई—

सुधा : तो क्या छुट्टी बढ़ाओगे ? देखा काका, कितना दयालु है हमारा नन्दू ? आप के लिये ही उठा रहा है यह सारा कष्ट !

नरसू : हाँ, भई। तुम सभी के हृदयों में मेरे प्रति दया का श्रोत उमड उठा है—सभी को मेरी चिन्ता है। पर तुम्हारी इस दया के बोझ से दबकर मैं मरा नही, तो समझूँगा कि मैने सब कुछ पा लिया। बंबई की हवा लगते ही मेरी यह बेटी भी पंख-फूटे पक्षी की तरह उडने लगी है। (विजय आता है।) आ गया तू, विजय? देख, यह क्या हो गया? मेरी यह सखू भी प्रेम करने लगी है।

विजय : प्रेम! प्रेम! प्रेम! प्रेम! जो भी आता है प्रेम की बातें करने लगता है। देश में अन्न की कमी हो गई है। कुएँ और तालाब सूख गये हैं। पशुओं को भी चारा नसीब नहीं होता। हमारे देश में अनाज पैदा नहीं होता और विदेश से आता नहीं है—भूखो मरने की नौबत आ गयी है, और इधर ये लोग प्रेम की बातें करते हैं! अरे भई, दुनिया में इंसानियत भी कुछ है या नहीं? (सब हँस पडते हैं।) हँसते क्यों हो? क्या ये हँसने की बातें हैं? और—(जया की ओर देखकर) यह भी हँस रही है! मेरी सहधर्म-चारिणी होने जा रही थी यह—

सुधा : तो क्या हो गया? अभी भी होगी वह—

विजय : (बिगड़कर) अभी भी? आज के बाद? छोड दे वह आशा। मै संन्यासी हो गया हूँ—प्रेम के लिये नहीं, देश के लिए बैरागी हो गया हूँ। सेवा के लिये वैरागी हो गया हूँ। अब मै क्या करूँगा, जानती हो?

सुधा : क्या करोगे ?

विजय : झोली टागूँगा । घर-घर जाकर भीख मागूँगा और इस अकाल मे भूखों मर रहे लोगों को दो कौर अन्न दूँगा ।

नरसू : क्या सचमुच भीख मागेगा तू ?

विजय . तो क्या तुम समझ रहे हो कि मै झूठ बोल रहा हूँ ? मेरी प्रतिज्ञा भीष्म-प्रतिज्ञा होती है । आसमान भले ही टूट पडे, पर मै अपनी प्रतिज्ञा से टस से मस नही हो सकता—

नरसू : सखू सुन—सुना तूने ?—ऐस जोश चाहिये । ऐसी उमंग होनी चाहिये मनुष्य में । ऐसा जोश है क्या तेरे नन्दू में ?

विजय : तेरे नन्दू में ? अरे वाह ! इतने जल्दी इन दोनों का 'तेरा-मेरा' भी शुरू हो गया ? देख सखू—प्रेम के पीछे पडकर, अयोग्य सिद्ध हुये अपने इस भाई की ओर देख ।

सखू ' क्या तुम अयोग्य हो ? तुम्हें अयोग्य कौन कहेगा, विजय दादा ? हर अखबार में तुम्हारा फोटो छपता है । उस दिन तुम्हारे भाषण की एक लम्बी रिपोर्ट छपी थी । 'प्रजा-शक्ति' का पूरा एक पन्ना भरा हुआ था तुम्हारे भाषण से । तुम्हें कौन कहता है नादान ?

विजय : यह कहती है मुझे नादान ।

सखू : कौन ? यह ? जया दीदी, तुम्हें नादान कहती है ?

जया : कब कहा था जी मैने नादान ? (ठहरकर) बताइये न ? अपने आप को खुद ही बदनाम कर रहे हो और उसके लिए दूसरो पर आरोप लगाते हो ? वाह भई, यह भी खूब है !

सुधा : यही तो नादानी है।

विजय : तू चुप रह सुधा। तुझसे किसने कहा है मुँह डालने के लिये हमारे झगडे मे ?

सुधा : देखो-देखो जया—देखिये काका—सुन लो नंदू ? यह 'हमारे' कह रहे है—कौन है ये हम ?

विजय : मैंने 'हमारे' नही कहा था। मैंने कहा था 'इस' झगडे में।

सुधा . नहीं। तुमने 'हमारे' ही कहा था। जो हृदय के भीतर था चट-से वही बाहर निकल पडा। अब क्यों अपने शब्दों को वापिस ले रहे हो ? अब आप ही बताइए काका, इन्होंने क्या कहा था ?

नरसू हाँ। 'हमारे' ही तो कहा था इसने। मैं झूठ क्यों बोलूँ ? मुझे किसी की तरफदारी नही करनी है। सुधा की बात मुझे जँच रही है। ठीक ही कहा है उसने कि जो हृदय में था, चट-से वही बाहर निकल पडा।

नंदू हाँ। 'हमारे' ही तो कहा था। और हमारे कहते समय जया दीदी की तरफ इसने कुछ ऐसी निगाह फेंकी थी—कि—हाय रे हाय—अगर जया दीदी की जगह मै होता तो चित ही हो जाता !

विजय : तू चुप रह नन्दू । तू सब लोगों को अपने जैसा ही समझता है । आजकल मै देख रहा हूँ कि तू सखू को लिए दिन-भर घूमता रहता है सारी बम्बई में । सखू ? वाह रे नाम ! ऐसे रद्दी नाम पर मोहित होकर चापलूसी करने वाला मनुष्य मेरी नजर की परख करे ? क्यों ?

जया : इस नाम में क्या बुरा है ?

विजय : तुम मुझसे बात मत करो ।

जया : और आप बातें कर रहे है सो ?

विजय : मै तुमसे कहाँ बात कर रहा हूँ ? मै अपने मुँह से सिर्फ उद्‌गार निकाल रहा हूँ ।

जया : आपने मुझसे अभी स्पष्ट कहा कि, 'तुम मुझसे बात मत करो ।' मुझे लक्ष्य करके कहा । मेरी ओर देखकर कहा । नन्दू ने अभी जो कहा वह झूठ नही । जब मेरी ओर आपकी निगाह पड जाती है तो आप का कलेजा पानी-पानी हो जाता है । क्यों व्यर्थ के ढोंग कर रहे हो ?—

नरसू : अरे ओ लड़को, क्या भूल गए कि मै बैठा हूँ यहाँ ? अरे भई, बुजुर्गों की कुछ तो शर्म खाओ !

सखू : बुजुर्ग हमारे सामने बैठे हैं इसीलिये तो जया दीदी को जोश चढ़ रहा है ।

सुधा देखो-देखो ! अब सखू का भी मुँह खुलने लगा ।

जया : सचमुच इसका मुँह खुलने लगा है । यह काहे का प्रभाव है ?

नरसू : तुम्हारे झगडे का ।

सुधा : नहीं, काका नहीं—यह प्रेम का प्रभाव है ।

विजय . (ओठ चबाकर) फिर ले आई प्रेम ? प्रेम को छोड़कर क्या तुम लोगों को और कुछ नजर ही नहीं आता है ? प्रेम का मजा अभी चखा नहीं है तुम लोगों ने ?

नंदू : और क्या तुम चख चुके हो ?

विजय : मुझे अगर प्रेम का पता न चले तो फिर किसे चलेगा ? मैंने प्रेम का सिर्फ मजा ही नहीं चखा है बल्कि प्रेम के बिच्छू ने मुझे अच्छी तरह डक भी मारा है । इसीलिये तो मै इस तरह संन्यासी बन गया हूँ ।

नंदू : संन्यासी ! अरे वाह रे संन्यासी !

विजय : तू चुप रह, नन्दू ।

नंदू : क्यों चुप रहूँ ? क्या एक तुम ही बोल सकते हो ? क्या भगवान ने हमें जबान नही दी ? क्या बात करने की अक्ल हमें नही दी ? बडे वैरागी बने फिरते हो ? बाप के भरोसे भाषण देने वाले हो तुम ! तुममें शक्ति है, विद्वता है पर स्वयं कमाकर पेट भरने का ज्ञान अभी तुम्हें नहीं हुआ है । मुफ्त में खाने को जो मिल रहा है ! इसीलिए वैराग्य की बातें कर रहे हो । वैरागी बने हो । सिर्फ दाढ़ी बढा लेने से ही मनुष्य वैरागी नहीं हो जाता । अगर ऐसा होता तो बकरों को भी वैरागी कहते ।

नरसू : अरे भई, ठहर-ठहर । नाहक क्यों आग में तेल

छोड रहा है ? एक तो पहिले से ही वह भड़का हुआ है और फिर तू उसे इस तरह भला-बुरा कहने लगा ··

सखू : तो क्या होगा ? क्या इसकी दाढ़ी झड़कर गिर पडेगी ?

सुधा : सुन लो। यह प्रतिध्वनित भाषण है—प्रतिध्वनित समझे ? नंदू के भाषण को अब सखू गुँजाने लगी है। और उधर देखो, ज्वालामुखी किस तरह लगातार धुँधवा रहा है ?

नरसू : छि ! छि ! अब तो बिल्कुल कमाल कर दिया तुम लोगों ने ! कम-से-कम मेरे सामने तो कुरुक्षेत्र न मचाओ। मै अब चल ही दूँ यहाँ से, यही ठीक होगा। तुम लडते रहो यहाँ—एक दूसरे के जले फफोडे फोड़ते रहो—(कहते-कहते चला जाता है।)

सुधा : जरा ठहरिए न, काका ! कम-से-कम सुन तो लीजिए। न जाने मुझे क्या सूझी जो बोल पडी। जरा सुन तो लीजिए काका !—(कहते-कहते जाती है।)

नंदू : सखू अब आओ। यहाँ जाकर बैठ जाओ। ये दोनो अब यहाँ लडेंगे। दोनों अच्छे मँजे हुए लडाके है। लडाई बडी अच्छी लगती है इन्हें—हमें भी पसंद है। अगर यह सीखना है कि किस तरह लडा जाता है, तो ऐसे गुरू हमें खोजने से भी नही मिलेंगे—

विजय : कब से कह रहा हूँ नंदू, कि तुम खामोश बैठो। क्या सुना नही ?

नंदू : तुम अपने इस वाक्य को कितनी बार दोहरा चुके हो, विजय दादा ? (सखू हँसती है ।)

विजय : हँसो—हँसो मुझ पर ! हँसी का विषय ही हो बैठे है हम ।

जया : कौन 'हम' ?

विजय : हम याने मैं—संपादक की भाषा में बोल रहा हूँ—

नंदू : वाह, यह बडा अच्छा सम्पादन कर रहे हो तुम !

जया : उत्तम ! वाह ! क्या कहने ! नंदू, तुम इसी तरह बोलते रहो । और सखू, तुम क्यो खामोश हो गयी ?

विजय : ऐसी बातों से तग आ जाने वाला प्राणी मै नहीं—अपने मस्तिष्क को काफी शान्त रखकर बैठा हूँ मैं यहाँ । यह तो हमारे पिता जी के अनुशासन की कृपा है कि ऐरा-गैरा जो भी हमारे घर आता है, हमें—नही, नही, मुझे मनमाना सताता रहता है जैसे हम इस घर मे कोई है ही नही ! हम याने मैं !

(उसके भाषण के दौरान मे तीनो तीन प्रकार से हँसते है ।)

सखू : तुम्हारा इस घर से क्या सम्बन्ध ?

विजय : यह सवाल तू पूछ रही है सखू ? और मुझसे ? इस घर के मालिक से ?

सखू : संसारी घर के मालिक संसारी होते है, वैरागी नही । वैरागी का क्या धरा है इस घर में ? जिस तरह घर मे आये भिखारी को चार दिन के लिए आश्रय दे

देते हैं, उसी तरह तुम्हें भी आश्रय दे दिया है यहाँ—

विजय : लो, देख लो। इसे यहाँ आए अभी चार दिन भी नहीं हुए और हमारे घर पर अपना हक जमाने लगी।

सखू : यह मेरे काका का घर है।

विजय : यह मेरे बाप का घर है।

नंदू : तुम्हारे बाप का घर भले ही हो, पर तुम तो वैरागी हो और वैरागी किसी भी गृहस्थ के घर पर अपना अधिकार नहीं बता सकता।

विजय : मुझे तंग कर-करके इस घर से भगा देने का इरादा दिखता है तुम्हारा। सभी उलट पड़े हैं मुझ पर! जिनसे मेरा खून का रिश्ता है वे तो तंग कर ही रहे हैं मुझे। पर क्या पराये लोग भी मेरे घर आकर मेरी ही बेइज्जती करेंगे?

जया : जैसी करनी वैसी भरनी!

विजय : तुम मत बोलो जी।

जया : मैं किसी से बोली ही नहीं थी। मैं अपने आप से कह रही थी। नाट्य-शास्त्र का यह नियम है न कि किसी पात्र का स्वगत भाषण उसके निटकवर्ती पात्र को नहीं सुनना चाहिये।

विजय : यहाँ कोई नाटक नहीं हो रहा है। यह एक गृहस्थ का घर है। धधकती हुई गृहस्थी का धधकता हुआ रूप है यह।

जया . क्यों जी सखू, गृहस्थो के घरों में वैरागी रहा करते हैं क्या तुम्हारे कोकरण मे ?

नंदू : यहाँ बम्बई की बातें हो रही हैं, जया दीदी। इस सिलसिले में कोकरण का उदाहरण किस काम का ? बम्बई कोकरण मे भले ही हो, पर बम्बई कोकरण नही है। भारतीय और पाश्चात्य—दोनों सस्कृतियों का जहाँ मेल हो गया है, ऐसी हमारी बम्बई भारत की एवरेस्ट है।

सखू : सुनो-सुनो ! (तालियाँ बजाती है।)

विजय : यदि तुम्हारा ख्याल हो कि इन बातों से तंग आकर मैं घर छोडकर चला जाऊँगा तो तुम्हारा यह भ्रम है।

जया ' सुन लिया सखू ? तुम भी कह दो उनसे कि हम भ्रम में नही हैं। घर छोडकर कोई नहीं जाएगा, इसका हमें पूरा विश्वास है—और न हम यह चाहते भी है कि कोई घर छोडकर चला जाए—

नंदू : यह तो हम भी नहीं चाहते।

सखू और हाँ। मैं भी नहीं चाहती। हम कोकरण वालों को तो घर पूरा भरा हुआ अच्छा लगता हे। चचेरा ही क्यों न हो, पर हमारा इकलौता भाई है। वह घर छोड़ कर चला जाए, यह भला कैसे चाहूँगी ? बल्कि मैं तो यह कहती हूँ कि वह विवाह करे—मेरे लिए एक भाभी ले आए। वाल-बच्चो से घर बिल्कुल भर जाए।

नंदू : किसके वाल-बच्चो से ?

सखू : *विजय दादा के।*

विजय : *मैं वैरागी हूँ—सुना सखू ? मैं वैरागी हूँ—सेवक हूँ—जनता का—दरिद्रनारायण का—अनाथ अपाहिजों का सेवक—*

जया : *और सुनो सखू ? मैं हूँ सेविका—दीन-दुर्बल की—अनाथ-अपाहिज की सेविका—* (यह कहती हुई विजय की ओर उँगली दिखाती है।)

विजय : *सेविका कहने से ही कोई सेविका नही हो जाती।*

जया : *और सेवक कहने से भी कोई सेवक नहीं हो जाता। आजकल तो केवल शब्दों का बोलबाला है। इधर तो कहना कि जनता का सेवक हूँ और उधर दूसरों के भरोसे मोटर मे घूमना।*

विजय : *तुम चुप रहो, जया—*

जया : *मुझ से बोल रहे हो ? सखू, सुना तुमने ? इन्होंने मेरा नाम लिया ? क्या यही है तुम्हारे भाई की भीष्म-प्रतिज्ञा ?*

सखू : *अजी, कहाँ की भीष्म-प्रतिज्ञा लिए बैठी हो ? पकड़ो उसका हाथ और ले जाओ खीचकर विवाह-वेदी पर।*

नदू : *यहाँ विवाह-वेदी नही—हाँ, चाहो तो यह कहो कि पकड कर ले जाओ रजिस्ट्रार के दफ्तर मे।*

सखू : *अजी, जा कहाँ रहे हो, विजय दादा ?*

नंदू : *वे हार गए—साफ हार गए। और अब चले घर के बाहर।*

विजय : (ओठ चबाकर) घर के बाहर नहीं, मै जा रहा हूँ घर के भीतर ।

सखू : मेरे पिता जी है वहाँ ।

विजय . जानता हूँ ।

नंदू · क्या इनके काका ? वे अगर भीतर हुए तो क्या होगा ?

सखू : जो होगा सो मालूम ही हो जायगा अभी । क्या काका से पूछने जा रहे हो, विजय दादा ?

विजय · मुझे किसी से कुछ पूछने की जरूरत नही । और इस में पूछने की बात ही क्या है ? तङ्ग कर डाला है मुझे तुम लोगों ने । मुझे अब चल ही देना चाहिये । (बोलते-बोलते चल देता है । तीनो ठहाका मारकर हँसते हैं ।)

नंदू . जया दीदी, देख क्या रही हो ? जाओ न उसके पीछे-पीछे । नरसू काका हैं ही वहाँ ।

जया . मै सब समझ गयी । यही तो तुम लोग चाहते थे ।

नंदू स्त्रियो की जाति भी कैसी होती है । हर बात में स्वार्थ ही दिखता है इन्हें ।

जया मै तो जा ही रही हूँ । अब तुम दोनों बैठो यहाँ । मुझसे कहती हो कि मै स्वार्थ देखती हूँ । और क्या इसमें तुम्हारा भी स्वार्थ नहीं है ? (जाती है ।)

नंदू आखिर गई तो ! हमने पहिले ही गलती कर दी । हमे इतनी जल्दी नहीं आना चाहिये था यहाँ ।

सखू : मै क्या जानती थी कि जया यहाँ आ जायेगी। अपने लिये तो मेरीन ड्राइव्ह पर अच्छा एकान्त था—

नंदू . एकान्त ? वह क्या एकान्त था ? चिऊँटियों जैसी भीड लगी थी वहाँ लोगों की। वहाँ एकान्त नहीं था—कोहराम था।

सखू : कम-से-कम मुझे तो वहाँ एकान्त लगा। हमारे गाँव में यदि कोई इस तरह एकान्त में बैठ जाए जैसे कि हम अभी बैठे हैं तो सब की नजरें एकान्त में बैठने वालों पर ही लग जाती हैं। इससे तो भीड ही अच्छी। उसमें हर एक अपने-आप में मस्त रहता है। कोई किसी की ओर ध्यान से नहीं देखता। सच्चा एकान्त भीड में ही मिलता है।

नंदू : खैर। कम-से-कम इस समय तो अब यहाँ एकान्त ही है।

सखू : यह कैसे कह सकते हो ? तुम्हारी वह कोइलिया भले ही 'कुहुक-कू-कुहुक कू' न करती हो, पर होगी वह जरूर कहीं तुम्हारे ही आसपास। तुम पर ही नजर लगाए रहती है वह।

नंदू : तुम्हें यह कैसे पता चला ?

सखू : एक ही जगह जब हम अपनी नजर लगा देते हैं तो उसे उसी स्थान पर टिकाये रखने के लिए हमें चार जगह चार प्रकार की नजर रखनी पडती है। मै इसी तरह से देख रही हूँ, इसीलिए मैं देख सकी।

नंदू : अच्छा, अब देखो सखू—

सखू : क्या मेरा यह नाम पसन्द है तुम्हें ? सब लोग तो मेरे नाम पर नाक सिकोडते है ।

नंदू : लम्बे-चौडे नामों से मुझे यही नाम अच्छा लगता है । सखू ! सखी ! प्राण सखी ! आहाहा ! प्राण सखी !

(भीतर सुमन गाना गाती है । जब वह गाती रहती है तब नन्दू बेचैन होकर आहे भरता हुआ उस गाने के मुख्य-मुख्य शब्दो का उच्चारण करके उपहास-भरे स्वर मे दुतकारता रहता है । सखू बीच-बीच में हँस पडती है । गाना समाप्त करके सुमन बाहर।नन्दू के पास आती है ।)

सखू देखो, यह आ गई ।

नंदू कौन ?

सखू : अजी, जरा देखो तो अपनी इस कोइलिया को । गर्दन क्यों मोड रहे हो ? इधर देखो न ? वैसे दिखने में वह पूरी कोइलिया नहीं है । खासी गोरी है ।

सुमन : आखिर कोकण के लोग !

सखू : क्यो—कैसे होते हैं कोकण के लोग ?

सुमन : वाचाल !

सखू : क्या हम कोकण के लोग वाचाल होते हैं ?

सुमन : हाँ ! और पागल भी !

सखू : सुन लो? अजी, जरा देखो न इस तरफ। यह कहती है कि कोकण के लोग वाचाल और पागल होते है।

नंदू : एक ही शब्द बोलने वाले एकशब्दी से वाचाल मनुष्य लाख दर्जे अच्छे।

सुमन : क्या यह इशारा मेरी तरफ है?

नंदू : हाँ! तुम्हीं से कह रहा हूँ। यहाँ क्या काम है तुम्हारा?

सुमन : बातें करनी है।

नंदू : किससे?

सुमन : तुमसे।

नंदू . मुझसे क्या बात करना चाहती हो?

सुमन : यह तो बैठी है—

नंदू : कौन यह—

सुमन : यह कोकण वाली!

नंदू : क्या तुम उसका नाम नही जानतीं?

सुमन : जानती हूँ।

नंदू : क्या नाम है उसका? बता सकती हो?

सुमन : हाँ।

नंदू : तो लो उसका नाम।

सुमन : मुझे पसन्द नहीं।

नंदू : क्या पसन्द नहीं। नाम पसन्द नहीं या यही पसन्द नहीं ?

सुमन दोनों पसन्द नहीं।

सखू : फिर क्या मै चली जाऊँ यहाँ से ?

सुमन : हाँ।

नंदू · नही। तुम यहीं बैठो। इसकी 'हाँ' और 'नही' के मारे मै परेशान हो गया हूँ। एक उत्तर पाने के लिए इससे सैतालीस प्रश्न पूछने पडते हैं तब कहीं यह क्या कहना चाहती है इसका पता चलता है। लम्बे गाने तो अच्छे याद रहते है इसे!

सखू · वे रटे हुये जो होते है।

सुमन : हाँ।

नंदू : इस 'हाँ' का अर्थ यह समझना चाहिये—समझी सखू, कि चूँकि गाने रटे रहते हैं इसलिए वे ध्यान में रहते है। पर जब अपने मन से या अपनी स्फूर्ति से बोलना हो तो बस एक ही शब्द—हाँ। उससे कह दो कि इस 'हाँ' और 'ना' की माला बनाकर अपने गले में पहिन ले। क्या पूछना हो सो जल्दी पूछ लो। पूछो—

सुमन : यह है न ?

नंदू हाँ-हाँ। यह है, यह तो मैं भी जानता हूँ। पर तुम जो हो यहाँ, तुमसे तो मै बिल्कुल ऊब उठा हूँ।

सुमन : क्या मैं बुरी हूँ ?

नंदू : (एक एक शब्द तोडकर) हाँ, तुम बिल्कुल बुरी हो। तुम मुझे पसन्द नही। सुन लिया ? जाओ अब—

सुमन : यह कोकण वाली—अपढ़—

नंदू . अपढ़ भले ही हो। पर शब्दों का काफी भंडार है उसके पास। हाँ, तो अब चल दो यहाँ से। (रुककर) क्यों ठहरी हो ? कह रहा हूँ न, कि जाओ।

सुमन : कैसे जाऊँ ?

नंदू : पैदल जाओ। (क्रोध से) पर यहाँ से आखिर टलो तो—

सुमन : दुर्भाग्य !

नंदू : हाँ, दुर्भाग्य। तुम्हारा दुर्भाग्य। अब अपने कारण मेरा दुर्भाग्य न बुलाओ।

सुमन : जाती हूँ।

नंदू : जाओ।

सुमन : क्या सच ?

नंदू : अरे हाँ, सच ! सच ! सच !

(सुमन रोती और सिसकिया भरती चल देती है। सिसकियों के बीच)

सुमन : निगोड़ी कोकण वाली कहीं की ! कलमुँही ! (रोते-रोते प्रस्थान)

नंदू : आखिर बला टली तो।

सखू : गरीब बेचारी !

नंदू . गरीब बेचारी ? क्या तुम कह रही हो यह ?

सखू ' बिल्कुल ही भोली है बिचारी। रोते-रोते गई।

नंदू . पहिले गाना सुनाया था। अब रोना सुना दिया। उसका गाना और रोना दोनों बराबर है। मुझे उस पर बडा गुस्सा आता है। नाहक ही भुनभुन लगाये रहती है मेरे पीछे। ऐसी रोनी-सूरत वाली लडकियाँ मुझे अच्छी नहीं लगतीं।

सखू . फिर कौन-सी अच्छी लगती है ?

नंदू : बक्की—वाचाल—झगडालू—बोलते समय फटाफट पटाखे बजाने वाली—

सखू : फिर क्या मैं तुम्हें अच्छी लगती हूँ ?

नंदू : यह क्या मुझे बताने की जरूरत है ? इसीलिए तो छुट्टी लेकर घूम रहा हूँ तुम्हारे साथ। लगातार धड़ा-धड बातें करनी चाहिये—बातें सुननी चाहिये—सवाल पूछा कि तडाक से जवाब देना चाहिए। तभी मनुष्य के जीवन में रङ्ग भरता है। उसका क्या ? सिर्फ गाती है—बस ! तो क्या गाना ही सुनता रहूँ ऐसी रोनी-सूरत वाली का—

नरसू : (भीतर से बोलते-बोलते प्रवेश करते हैं।) अरे क्या किया उस लडकी को ? वह क्यों रो रही है ? क्यो रे नदू, तू है न यहाँ ? बता, क्या उसे तू ने रुलाया है ? (सुधा आती है।) और तू आ गई सुधा ? सुमन क्यो रो रही है री ?

सुधा : अभी सुमन की बात छोड़िए, काका। उधर कुरुक्षेत्र मचा हुआ है।

नरसू : कहाँ ?

नंदू : किनका ?

सखू : कुरुक्षेत्र का क्या मतलब ?

सुधा : वे दोनों लड़ रहे है एक दूसरे से। मारपीट पर आमादा हो गए हैं।

नरसू : कोई हर्ज नहीं। हो जाने दे मारपीट। आगे चलकर गृहस्थी में यही तो होना है। जब आरम्भ इस प्रकार होगा तभी तो आगे गृहस्थी सुखमय होगी।

सुधा : क्या यह कोकण की रीति है ?

नरसू : अरी, कोकण की नहीं—यह सारी दुनिया की ही रीति है। प्रेम की उमंग उमड़े बिना क्या कोई मारपीट करता है ? मन में किसी भाव का आवेग आने से हाथापाई शुरू हो जाती है। वह आवेगा चाहे क्रोध का हो, द्वेष का हो या बदमाशी का हो—आवेग आए बिना कोई किसी पर हाथ नहीं उठाता।

नंदू : आओ सखू, हम भी मारपीट करें। मुझे बड़े जोर का आवेग आया है। (सुधा हँसती है।) हँसती क्यो है सुधा ? आवेग के बिना प्रेम नहीं और प्रेम के बिना आवेग नहीं—और प्रेम का आवेग आते ही मारपीट करनी चाहिए, ऐसा अभी काका ने बताया है। आओ सखू, अब हो जाने दो अपने दो-दो हाथ –

सुधा : दो हाथ नहीं। दो के चार हाथ।

नरसू : अरे बाबा, क्यों मेरी बात का उल्टा-सीधा अर्थ लगा रहे हो?

नंदू : नहीं काका, मै उल्टा-सीधा अर्थ नहीं कर रहा हूँ। आपकी बात मुझे पूरी तरह जँच गई है। यदि उसके अनुसार आचरण न करूँ तो आप मुझे अपना जमाई कैसे बनायेंगे?

नरसू : आँ? क्या मामला इस हद तक पहुँच गया है?

सुधा : इसे छोडिये अभी। (दूर से विजय और जया एक दूसरे से 'चुप रहिये'—'तुम चुप रहो' कहते हुये नज़दीक आ रहे है।) सुनिए काका, सुन लीजिए—

नरसू : अरे हाँ, सच तो है! ये तो बिल्कुल हाथापाई पर ही आ गए मालूम होते हैं!

जया . (बाहर से आकर) चुप रहिए—

विजय . (बाहर से आकर) मै क्यों चुप रहूँ? क्या किसी के बाप का डर है मुझे? तुम मेरे सामने बड़ी फिलासफी छाँट रही हो! अपनी यह फिलासफी कालेज में लडकों को सिखाया करो। समझीं?

जया : उन्हें तो सिखा ही रही हूँ और अब इस लडके को भी सिखाती हूँ।

विजय : किसे कह रही हो लडका? मुझे?

सुधा : हाँ। सच तो है, जया! किसे लडका कह रही हो? दाढ़ी तो देखो उसकी।

जया : उस दाढ़ी को मुड़ाने के लिए• ही तो कह रही हूँ इनसे।

विजय : मेरी यह दाढ़ी तुम्हारी आँखों में क्यों चुभ रही है ?

सखू : आँखों में नहीं। दाढ़ी आँखों में नहीं चुभा करती।

विजय : अब तेरा भी मुँह खुल पडा, क्यों री कोकणी! इसकी आँखों में ही चुभती है मेरी यह दाढ़ी—

सखू : आँखों में नहीं---पुरुषों की दाढ़ी कहाँ चुभा करती है स्त्रियों को ?

नरसू : अरी, कुछ शर्म खा। मैं तेरा बाप हूँ—तेरा काका हूँ—प्रत्यक्ष तुम लोगों के सामने खजूर की तरह सीधा खडा हूँ। और फिर भी तुम लोग यह सब कह रहे हो ?

विजय : मैं चाहे जो बोलूँगा।

नरसू : तुझसे नहीं कह रहा हूँ। कह रहा हूँ इससे—बम्बई आए अभी चार दिन भी नहीं हुये हैं इसे—और जबान तो देखो, कतरनी जैसी चलने लगी है इसकी —जो मुँह में आता है वही बक मारती है।

जया : अब सब खामोश हो जाओ। कोई मत बोलो। मुझे पहिले ठीक से इनकी खबर ले लेने दो। इस वक्त मुझ पर जोश चढ़ रहा है। क्यों जी, आपने प्रतिज्ञा की थी कि मुझसे कभी नहीं बोलेंगे। पर अब वह कहाँ गई आपकी प्रतिज्ञा ? क्यों आये थे मुझसे बातें-करने—मेरे पास ?

नरसू : तुम्हारे पास ? क्या वे अपने-आप आये थे ?

जया : हाँ । अपने-आप आए थे । और सिर्फ आए ही नहीं, बल्कि मेरे कन्धे पर इन्होंने अपना हाथ भी रखा था ।

सुधा : (जोर से हँसकर) सच ? मुझे यह सच नहीं लगता । क्या यह सच है, विजय दादा ?

विजय : तू उसकी क्या बात सुनती है ? वह तो मन-माना बक रही है ।

जया : मनमाना कैसे ? बिल्कुल इस तरह हाथ रखा था मेरे कन्धे पर ।

नंदू : किसने ? क्या इस वैरागी ने ? कन्धे पर हाथ रखा ? एक अबला के कन्धे पर हाथ रखा -? क्या वहाँ और कोई नहीं था ?

जया : वहाँ कोई न था और उसी मौके से तो लाभ उठाया इन्होंने और ऊपर से कहते है कि न बोलने की प्रतिज्ञा की है ।

नरसू . क्यों रे विजय, क्या यह सच कह रही है ? क्या इसके कन्धे पर हाथ रखा था तू ने ?

विजय : यह झूठ बोलती है ।

नरसू : तो फिर सच क्या है ?

विजय सच बात तो यह है कि मै अपने पूजन के कमरे में जा रहा था—

नंदू : पूजन के कमरे में ? अरे वाह !

विजय : हाँ, हाँ। पूजन के कमरे में। भारत माता का पूजन करता हूँ—पराधीनता की बेड़िया तोडकर बन्धन-मुक्त हुई भारत जननी का—

नरसू : अरे हाँ, यह तो मैं भी जानता हूँ। १५ अगस्त को अपने गाँव में मैंने भी इसका एक जलूस निकाला था —पर इसे छोड अभी। पहिले यह बता कि इसके कन्धे पर तू ने हाथ क्यों रखा?

विजय : मै पूजन के कमरे में जा रहा था—जाते समय बात यह हुई कि यह रास्ते में खडी थी—

जया : मै रास्ते में नहीं खडी थी।

विजय : तुम रास्ते में खडी थीं—मै कहता हूँ।

जया : मैं रास्ते में नही खडी थी—एक तरफ से जा रही थी, तभी ये आगे बढे ··

विजय : नहीं—मैंने इससे कहा—'दूर हटो'

जया . याने मुझसे ये बोले—प्रतिज्ञा भंग कर दी!

विजय : नहीं। मैंने 'दूर हटो' नहीं कहा—मैं मुँह से नहीं बोला—दूर हट जाने का इसे हाथ से इशारा किया और मेरा हाथ इसके कन्धे को थोडा छू गया। 'दूर हटो' मैंने नहीं कहा—मैने इससे कोई बात ही नहीं की···

जया : आप बोले थे—आप साफ-साफ बोले थे। आपने कहा था 'दूर हटो'—

विजय : और फिर यह मुँह उठाकर बोलने लगी—(सुधा हँसती

है ।) हँसती क्यों है ? यह धडाधड बोलने लगी—और फिर मेरा पित्त उबल उठा ।

नरसू : और फिर क्या तूने इस पर हाथ उठाया ?

जया : नहीं। इन्होंने मुझ पर हाथ नहीं उठाया। इन्होंने सिर्फ मेरे कन्धे को कसकर पकड लिया । (सभी हँस पडते है।) मैं बिल्कुल सच कहती हूँ— देखिये, वे भी इंकार नही कर रहे है।

नरसू : और इसके बाद क्या तुम दोनों में मारपीट शुरू हो गई ?

जया : इनकी क्या ताकत है मुझे मारने की ? मैंने इनकी दाढ़ी पकड़ ली !

विजय : मेरी दाढी पकडकर खींची इसने। पर मै चिल्लाया नही। फिर भी यह मुझे कायर कहती है।

नंदू · अरी, चल। चल सखू। हम भी मारपीट करने वाले थे न ? चल, जल्दी चल। देख, मुझे फिर जोर-शोर से आवेग आया है।

सखू . यह कैसी बदतमीजी ! मेरे कन्धे पर हाथ रखते हो ? दाढ़ी न होते हुये भी कन्धे पर हाथ रखते हो ?

सुधा : (जोर से हँसती हुई) देखिए काका, देखिए काका, क्या मजा हो रहा है ?

नरसू : अरे, तुम लोगों को यह हो क्या गया है ? अरे भई, यदि घर के बुजुर्ग की हैसियत से मेरी परवाह नहीं करते तो न सही, पर कम-से-कम एक पराया ही

समझकर तो मेरी कुछ शर्म खाओ। यह अपने को वैरागी कहता है, पर मुझे इसका यह सारा ढोंग जान पड़ता है। मेरा पक्का विश्वास हो गया है कि इस प्रोफेसर छोकरी की फटकार से अब यह बिल्कुल सीधा हो गया है। देखो-देखो उसकी तरफ—डबरे में पड़ी बिल्ली की तरह कैसा सिकुड़ गया है। बस, अब एक ही उपाय है। सुधा, क्या तेरा बाप अभी दफ्तर से नहीं लौटा? खैर, नहीं आया तो न सही। मैं ही इस बेवकूफ का सारा वैराग्य अभी उतारे देता हूँ। 'मन में कछु और है बाहर में कछु और?' दुनिया की आँखों में धूल झोंकना चाहता है। पर याद रखो बच्चा जी, हम बूढ़ों की नजर बड़ी पैनी होती है। बोल जया, तू क्या कहना चाहती है?

जया : मैं भी तो वही कहना चाहती हूँ।

सुधा : वही कहना चाहती हो, याने क्या कहना चाहती हो?

जया : सुधा, तुम इस बात को नहीं समझोगी। सुनिए काका जी, मेरी एक ही शिकायत है—मुझे इनकी दाढ़ी पसन्द नहीं।

नरसू : पर यह तो पसन्द है न? (जया अधरों पर एक मन्द मुस्कान बिखेर देती है।) हँस दी? प्रोफेसर हो गई तो क्या हुआ! आखिर है तो जाति की स्त्री। और विजय, अब तू बता—तुझे क्या पसन्द है? अपनी दाढ़ी पसन्द है या जया पसन्द है? बता न?

सुधा : *वह क्या बतायेगा अब ? 'हाँ' कहता है तो भी मुश्किल और 'ना' कहता है तो भी मुश्किल ! बताओ न दादा, इसी चक्कर में पड गए हो न तुम ?*

विजय : *नहीं । मैं वैरागी हूँ । देश के लिये वैरागी—जन सेवा के लिए वैरागी…*

सखू : *देखिए, देखिए पिता जी, उसे आँख से इशारा कर रहा है । अभी इसका मुँह आप की तरफ था । देखिये, उसने वह जया की तरफ फेर लिया और देखिये उसकी तरफ देखकर कैसा मद-मंद मुस्करा रहा है ? पिताजी, जरा देखिए तो ! अजी, अब क्यो बन रहे हो, विजय दादा ? जो देखना था मैने देख लिया—सब से कह दिया—सब को मालूम हो गया । अब चुपचाप 'हाँ' कह दो और पकड लो उसका हाथ । यह कोकण की नजर है मेरी—समझे जनाब ?*

नंदू : *राम राम ! कैसी बुरी दशा है यह ! इतना कट्टर वैराग्य—देश सेवा का कठिन व्रत—इतनी लम्बी दाढ़ी—सिर्फ एक अबला के कन्धे पर हाथ रख देने से सब व्यर्थ हो गया ।*

विजय . *तुम चुप रहो, नन्दू !*

नंदू . *फिर तुम्हीं बोलो न ? गूँगे जैसे क्यो खड़े हो ? क्या घिग्घी बंध गई है तुम्हारी ?*

नरसू : *अब उसे बोलने की क्या जरूरत है, रे लडको ? हम*

वृद्धों की नजर ने सब देख लिया है—सब कुछ समझ लिया है। अब हम पुराने-जमाने के बूढे नही रहे। नई दुनिया की नई परियों के साथ हम बूढ़ों को भी नवीन नयापन आने लगा है। कहाँ है वह गाने वाली लडकी ?

सखू : क्या वह जो सिर्फ एक ही शब्द में जवाब देती है। वह चल दी भीतर—शायद रो रही है।

नरसू : उससे कह दो—रो मत। गा—खूब अलाप-अलाप कर गा। रोने के आवेग से जब गाना निकल पडता है तो रोने का कुतूहल जाता रहता है। उससे कह दो कि वह अब एक···क्या कहते हो तुम उसे ?

नंदू : प्रेमगीत !

नरसू : प्रेमगीत ही न ? क्यो सुधा प्रेमगीत ही न ? उससे कहो वह एक प्रेमगीत गावे···

नंदू : पहिले जरा ठहरो—मै सखू से लडना चाहता हूँ। देखो सखू, मै तुम्हारे कन्धे पर हाथ रखता हूँ और तुम एकदम लडने लगना···

सुधा . और फिर चाहो तो मारपीट भी शुरू कर देना। क्या तुम्हारा यह ख्याल है नन्दू, कि पहिले लडाई और मारपीट किए बिना विवाह नहीं होता ?

सखू : बम्बई का तो रवाज ही यही है न ? अभी हमने अपनी आँखों देख लिया है।

नरसू : सखू, तुझे लडने की जरूरत नही। तेरे बारे में

मै सब कुछ देख लूँगा । जया, इधर आ । सुमन कहाँ है ? उससे कह दो—गाना शुरू करे । और जया—

जया : क्या आज्ञा है काका जी ?

नरसू : देख—उधर वह कैंची रखी है । उसे उठा ला ।

नंदू : और वह सेफ्टी रेजर भी उसे दे दीजिए । क्या नया ब्लेड ला दूँ ?

नरसू : ठहर नन्दू ! हाँ, जया, वह कैंची ले और अपने हाथ से इसकी दाढी काट दे । बडा वैरागी बना फिरता है बेटा । सुमन गा रही है । उस गीत के ताल पर इसकी दाढी काटती जा ।

(जया कैंची हाथ मे लेकर उसे बजाती हैं ।)

विजय : अरे बाप रे !

नरसू : मै बाप नहीं, काका हूँ तेरा ! तेरे इस ढोंग को मैं काट देना चाहता हूँ और इसी के हाथ से कटवाना चाहता हूँ । हाँ, सुमन, गाना शुरू कर और तू भी अपना काम शुरू कर दे, जया !

(सुमन गाती है । जया कैंची से विजय की दाढी काटती है । उसके काटने की लगातार आवाज और सब की मद-मद हँसी सुनाई पडती है ।)

[पर्दा गिरता है ।]

३

एक छोकरी और तीन आत्म-हत्यायें

[बम्बई का दादर भाग । एक नये ढंग का ब्लाक । बम्बई के अन्य ब्लाकों की तरह सजा हुआ । बाहर से भीतर आने का दरवाजा पीछे की तरफ है और भीतर आने का दरवाजा कमरे के दाहिनी ओर है । फर्नीचर बहुत कीमती तो नहीं है, पर नये ढग का है । बाहर से भीतर आने वाले को भी यह दीख पड़ता है कि ब्लाक में कोई मध्यमश्रेणी का व्यक्ति रह रहा है । बाहर से भीतर आने के लिए जो दरवाजा है उसकी ओर पीठ फेरकर, कोच पर जयत बैठा है जैसे कोई स्थितप्रज्ञ बैठा हो । सामने हेमन्त लगातार चहलकदमी कर रहा है । बीच-बीच मे जयन्त के सामने जाकर उससे बातें करने लगता है ।]

हेमन्त . *अब तुम से यह आखिरी बार कहे देता हूँ*···

जयन्त : (शान्ति से) *यह कितनी बार का आखिरी बार है ?*

हेमन्त : मजाक मत करो। इस वक्त मैं मजाक के मूड में नहीं हूँ।

जयन्त : और मैं भी मजाक के मूड में नहीं!

हेमन्त : (चिढकर) बात मत करो! एक शब्द भी मत बोलो। समझे?

जयन्त : समझ गया? (आँखें बन्द करके ध्यानस्थ-जैसा बैठ जाता है।)

हेमन्त : जब तुम्हारी यह टल्ले-नवीसी देखता हूँ तब मुझे बडा क्रोध हो आता है। (जयन्त की आँखे बन्द ही रहती हैं। वह यूँ ही तनिक मुस्करा देता है।) और हँस रहे हो? आँखें बन्द करके हँस रहे हो? इधर आँखें बन्द कर लेना और उधर मजे में मुस्कराना! तुम मेरे घनिष्ठ मित्र हो इसलिये अपना दुख तुमसे कहने आता हूँ और तुम हँसते हो?—आँखें बन्द करके हँसते हो?

जयन्त : (आँखे खोलकर) अब आँखें खोलकर हँसे देता हूँ! अब तो हो गया तुम्हारा समाधान?

हेमन्त : समाधान की बात पूछ रहे हो? आँखें बन्द हैं तब भी, और आँखें खुली हैं तब भी—दोनों स्थिति मे तुम हँसते रहते हो। तुम्हें गुदगुदी होती रहती है—भीतर से! (जयन्त हँसता है।) फिर हँसने लगे? अब कृपाकर मेरी बात सुन लो।

जयन्त : (गम्भीर होकर) ठीक है। अब कृपा करके तुम्हारी बात सुने लेता हूँ।

हेमन्त : छि ! छि ! छि ! तुम ने तो हद कर दी, भई ! इधर कलेजे में तीर चुभा है—भीतर—समझे ?—भीतर—तीर चुभा है । खून की धार बह रही है…

जयन्त : भीतर ?—

हेमन्त : हाँ, हाँ । भीतर खून की नदी बह रही है । प्राण व्याकुल हो रहे है । लगता है, पागल हो जाऊँगा—थोड़ा संतोष प्राप्त हो इसलिए तुम्हारे पास आया—और तुम हंस रहे हो ?—

जयन्त : आँखें बन्द करके ··

हेमन्त : हाँ, हाँ । आँखे बन्द करके हँस रहे हो । हूँः ! अब कृपा करके…

जयन्त : अच्छा, अब इसे छोड़ो—और आगे कहो । तुम्हारी प्रस्तावना भी मैंने सुन ली । ग्रन्थ का आरम्भ होने से पहिले ही उसका उपसहार भी तुमने कर डाला—हं, अब आगे बताओ ।

हेमन्त : अब मै आत्म-हत्या करूँगा ! समझे ? प्राण दूँगा—बडी निर्दयता से—मन का कठोर निश्चय करके—प्राण दूँगा !…

जयन्त : ठीक है ।

हेमन्त : ठीक क्या है ? मै प्राण दूँगा, क्या यह ठीक है ?

जयन्त : ठीक है याने, तुमने जो कहा वह मैंने सुन लिया और आगे तुम जो कहने जा रहे हो उसकी ओर मेरा ध्यान है ।

हेमन्त : इसमें शक नही जयन्त कि तुम बड़े बेशर्म हो। कलेजा नाम का जो एक पिलपिला पदार्थ होता है पसलियों के भीतर…

जयन्त : अब शरीर-विज्ञान में न घुसो—

हेमन्त : वह कलेजा है क्या तुम्हारे पास ? मुझे नही लगता कि तुम्हारे पास कलेजा है। कलेजा रखने वाले लोग आत्म-हत्या करने जा रहे मनुष्य से निर्लज्ज की तरह बातें नही किया करते ! एक मनुष्य प्राण देने जा रहा है। वह आगे क्या करे यह तुम से पूछ रहा है—

जयन्त : तो फिर पूछो न। तुम्हारी इस प्रस्तावना ने ही मुझे बिल्कुल परेशान कर डाला है। मैं जान चुका हूँ कि तुम प्राण देने जा रहे हो। पर तुम प्राण क्यो दे रहे हो यह तुमने मुझसे अभी तक नही कहा—अथवा तुमने मुझसे यह भी नही पूछा कि किस रीति से तुम्हें प्राण देना चाहिए—प्राण देने के बाद क्या होता है इसकी जिस तरह तुम्हें कोई कल्पना नही, उसी तरह मुझे भी नही। इसलिए तुम वह प्रश्न मुझसे नही पूछोगे, ऐसा मै माने लेता हूँ। अब आगे बोलो।

हेमन्त : प्राण देने का मैने दृढ़ निश्चय कर लिया है। इसमे अब कोई परिवर्तन न होगा। मैं क्यो प्राण दे रहा हूँ, यह जब तुम्हें मालूम होगा तब तुम—(मन्दा आती है उसे देखकर) लो, अब हो चुका ! ऐसी बाधाएँ आ जाती हैं !

(मन्दा जयन्त की पत्नी है। यद्यपि वह अति-आधुनिक ढग से सजी हुई नही है, फिर भी पुराने विचार वाले लोगो की दृष्टि में उसकी साज-सज्जा- कुछ भड़कीली ही लगती है। नई रोशनी के लोग जब उसे पिछडी हुई कहते है तब उसे खुशी होती है क्योकि उसके ओठो मे लिपस्टिक नही लगी रहती, बालों मे पिनो की सख्या भी कम होती है और ब्लाऊज भी अंग का बहुत-सा भाग खुला नही रखता। वह बडी बातूनी है और जयन्त को शोभा दे इतनी रसिक भी है।)

मन्दा : *कहिये हेमन्तजी, क्या हाल है ?*

हेमन्त . *हेमन्तजी मर गया!*

जयन्त . *नही, अभी मरा नहीं है। मरने के लिये जा रहा है। प्राण देने की प्रक्रिया यदि उचित समय पर और उचित रीति से अमल में लाई गई तो उसका मर जाना सम्भव है। परन्तु उस प्रक्रिया मे यदि कोई भूल हो गई, कुछ ढिलाई हो गई, कही फिसलन हो गई…*

मन्दा : *तो ये पूरी तरह जिन्दा रहेंगे। यही न ?*

हेमन्त : (नजदीक की कुरसी पर जाकर एकदम बैठ जाता है।) *अब बेशक बिल्कुल हद हो गई! अभी तक तुम अकेले थे। अब दो हो गये हो। कौन कह सकता है, शायद अभी कोई तीसरा भी आ टपके और तुम तीन हो जाओगे। और अगर तीन नहीं भी हुए तो वे दो हैं, वे ही मेरे लिये काफी हो गए हैं*

मंदा : सुनिये हेमन्तजी, अब हम बिल्कुल गंभीरता से इस विषय की चर्चा करेंगे।

जयन्त : किस विषय की ?

मंदा : इनकी आत्म-हत्या के बारे में।

जयन्त : आत्म-हत्या के बारे में गम्भीर विचार करेंगे ? याने, क्या करेंगे ?

मंदा : जरा ठहरिए—मैने कह दिया सही, पर ये आत्म-हत्या क्यों कर रहे है, इसका अभी मुझे कहाँ पता लगा है ?

जयन्त : और मुझे भी कहाँ लगा है ?

हेमन्त : अभी तक चुपचाप बैठा मै सुन रहा हूँ—बार-बार तुम लोग मजाक पर ले जाते हो। अरे भई, यह जीवन-मरण का प्रश्न है। यहाँ भगवान के घर का एक प्राणी भगवान के घर जाने की तैयारी कर रहा है। भगवान के घर से कोई बुलावा न आते हुए भी वह भगवान के घर जा रहा है

मंदा : पर क्यो जा रहा है ?

हेमन्त : क्यों ? (क्षण-भर के लिये रुककर) अब तो कहना ही होगा। बिना बताए चारा नही—बड़ा कठिन लग रहा है कहने के लिए—

जयन्त : तो फिर मत कहो।

हेमन्त : (खडा हो जाता है और जयन्त के पास जाकर) कहूँ क्यों नहीं—क्यों नहीं कहूँ ? क्या इसलिए कि कहना जान पर आता है ? जब जान पर ही बीती है तब यह कह

कर कि जान पर आता है, कब तक रुका रहूँ ? अभी तक रुका रहा। बताऊँ या ना बताऊँ, यह लगातार सोच रहा था—

जयन्त : एक बक्की की तरह बके जा रहे थे—बोल रहे थे !

हेमन्त हाँ, बोल रहा था—परन्तु बोलते समय भी सोच रहा था। इधर जीभ चल रही थी, उधर मस्तिष्क भी चल रहा था। दोनों स्थानों से दो प्रकार की प्रेरणाएँ प्राप्त हो रही थी। एक मन कह रहा था—मत बता। दूसरा मन कह रहा था—बता दे। लगातार दोनों में झगड़ा हो रहा था। बता दे—मत बता, मत बता—बता दे। लगता किसी भी मन की न सुनूँ।

जयन्त · फिर भी मुझसे बोल ही रहे थे ?

हेमन्त : हाँ, बोल रहा था। भीतर जो झगड़ा चल रहा था उसका किसी को पता न चले इसलिये बोले जा रहा था···

मंदा : फिर क्या अन्त हुआ उस झगड़े का ?

हेमन्त : अभी अन्त कहाँ हुआ है ? अभी तक वह झगड़ा हो ही रहा है। बताऊँ, या न बताऊँ ? जीवन-मरण का सवाल है यह···

मंदा : यह तो एक बार आप कह चुके हैं।

हेमन्त : (अनसुना करके) यह जीवन-मरण का सवाल है।

आज का ही नही, वल्कि अनन्तकाल के जीवन-मरण का प्रश्न है—

जयन्त ' अरे बाप रे !

हेमन्त ' मजाक मत करो । मैं सच कह रहा हूँ कि यह अनत काल के जीवन-मरण का प्रश्न है—हृदय के धागे मै बुन रहा था—आधा बुनाव हो गया था—एकाएक ढरकी रुक गई—इधर से उधर नही जा रही है। आगे सवाल यह खडा हुआ कि यह ढरकी आगे कैसे सरकेगी ? एक तरफ का धागा जो टूट चुका है…

मंदा धागा टूट गया है ?

हेमन्त : हाँ जी, धागा टूट गया है ?

मंदा . धागा टूट गया है ? याने, क्या हो गया है ?

हेमन्त ' यही तो अब बताना है । जहाँ वह बता दिया कि फिर आगे बताने को कुछ शेष ही नही रहेगा—इसीलिए रुका हुआ हूँ, इसीलिये सोच रहा हूँ ।

जयन्त ठीक है । तुम्हारे सोचते तक मैं थोड़ी देर के लिए बाहर आता हूँ । मेरी तरफ से तुम्हें व्यर्थ कोई बाधा क्यों हो ?

हेमन्त : नहीं । (जयन्त उठ रहा है । उसे पकडकर जबरदस्ती नीचे बिठाता हुआ) तुम्हें मै हरगिज नही जाने दूँगा । तुम यदि यहाँ से चले जाओगे, तो मेरा जो यह विचार-चक्र घूम रहा है, वह रुक जायगा—(क्षण-भर के लिये रुककर) और फिर—और फिर वे हृदय के बुने हुये धागे तडातड टूट जाएँगे ?'

मंदा : याने क्या हो जायेगा ?

हेमन्त : यही तो मैं नही समझ पा रहा हूँ। वह समझ पाऊँ इसीलिये लगातार बोले जा रहा हूँ। यह बोलना बन्द कर दूँ, तो मेरे प्राण व्याकुल हो उठेंगे। मुझे याद आने लगेगी—(रुक जाता है।)

मंदा : किसकी याद आने लगेगी ?

हेमन्त : किसकी याद आने लगेगी ? अब और किसकी याद आएगी ? याद एक ही है—(गम्भीरता पूर्वक) आत्म-हत्या करने की। समझीं ? आत्म-हत्या की याद जब सामने आकर खडी हो जाती है तब मन तुरन्त आत्म-हत्या करने के लिये दौड़ पडता है और फिर हृदय-सागर में बेचैनी की लहरें उमड़ उठती है। पर मैंने एक बार जो दृढ़ निश्चय कर लिया है वह अब किसी भी समय नही बदलेगा•••

जयन्त : नहीं बदलेगा ? कौन सा निश्चय ?

हेमन्त : यह भी कोई प्रश्न हुआ ? जब से आया हूँ, उस क्षण से लगातार चिल्लाये जा रहा हूँ कि मै आत्म-हत्या करने जा रहा हूँ। मै कायर नही—मै डरपोक नहीं—आत्म-हत्या करने से मै जरा भी नहीं डरता ?

जयन्त : फिर तुम्हें डर किस बात का है ?

हेमन्त : कौन कहता है कि मै डरता हूँ ? मुझे डर नही लगता। मै हट रहा हूँ सिर्फ एक ही बात के लिए—कोई यह न कहे कि हेमन्त ने ना-समझी की !—

सुना जयन्त ? मै ना-समझी नहीं करूँगा । जो कुछ करूँगा, खूब सोच-समझ कर ही करूँगा…

मंदा : पर आत्म-हत्या का मतलब ही ना-समझी है !

हेमन्त : हाँ, यह सच है कि आत्म-हत्या ना-समझी है। परंतु मैं यह ना-समझी बहुत सोच-समझकर करूँगा। जो मनुष्य खूब सोच-समझकर ना-समझी करता है, उसे पछताना नहीं पड़ता—

मंदा : पर आत्म-हत्या करने के बाद पछताने के लिये अवकाश ही कहाँ मिलेगा ?

हेमन्त : वही मैं भी कह रहा हूँ। आत्म-हत्या करने के बाद क्या होगा यह मै नहीं जानता। मंदा जी, तुम भी नहीं जानती और जिस व्यक्ति के कारण मैं आत्म-हत्या करने जा रहा हूँ, वह व्यक्ति तो उसे कभी भी न जान सकेगा। आप सब लोग जीवित रहेंगे; खाएँगे-पिएँगे, हँसेंगे-खेलेंगे, मजा लूटेंगे, प्राकृतिक सौन्दर्य को आँख भर कर देखेंगे। दिन में सूरज और रात को चंदा देखेंगे। परन्तु उन दिनों और रातों में मै कहाँ रहूँगा इसका तुम्हें भी पता न रहेगा—कौन कह सकता है, शायद मुझे भी वह पता न रहे ? शायद मै कहीं होऊँगा ही नहीं। होना और न होना दोनों समान हो जाएँगे !

मंदा : पर यह सारी उठा-पटक तुम कर किस लिए रहे हो ?

हेमन्त . वही अब बता रहा हूँ मैं तुम्हें— (रुक जाता है।)

(तीनो क्षण भर के लिये चुप रहते हैं। कोई कुछ नही बोलता। एकदम जैसे सारा बदन सिहर उठा हो हेमन्त थरथराता हुआ नजदीक की कुरसी पर जाकर बैठ जाता है। मंदा और जयन्त दौडकर उसके पास जाते है।)

मंदा : *क्या हुआ ? यूँ एकदम घबडा क्यों गए ?*

हेमन्त : *कौन कहता है कि मै घबडा गया ?*

जयन्त . *फिर अभी-अभी तुम्हें यह क्या हो गया था ?*

हेमन्त *मै निश्चय कर चुका*—(बिल्कुल रुखाई से) *मैं आत्म-हत्या करूँगा—मै आत्म-हत्या क्यो करूँगा यह बताना मै अभी तक टालता रहा। आरम्भ में ही मै यह कह सकता था। परन्तु मैंने कहा नही। पर अब जब कहने का निश्चय कर लिया तो मेरे रोंगटे खडे हो गए। क्षण-भर के लिए लगा कि न कहूँ। पर अब कह दूगा। मै आत्म हत्या क्यो कर रहा हूँ यह मै अब बताऊँगा—सुनो*

(वे दोनो उसके दोनो ओर गम्भीरता से खडे हो जाते है। वह आकाश की ओर नजर लगाकर निश्चल बैठा है।)

हेमन्त : (जैसे चौक गया हो) *हॅ अब सुनो—*

(गोपाल आता है। जोर-जोर हॉफ रहा है। उसका चेहरा डरा हुआ है। वह बेहद घबडाया हुआ है।)

गोपाल · (हॉफता हुआ) *भयकर ! बहुत भयंकर ! ! अब भी*

अगर याद आ जाती है तो एकदम रोंगटे खडे हो जाते हैं...

जयन्त : क्या बात है ? क्या हुआ ?

गोपाल : बहुत भयकर हो गया ! जिन्दगी मे ऐसा प्रसङ्ग मैने कभी नही देखा था। अजी, वह कूद पडा—एकदम कूद पडा ! (वह आँखे कडी कर के सूनी दृष्टि से देखता है।)

मंदा · कौन कूद पडा ? कहाँ कूद पडा ?

गोपाल . कह रहा हूँ न, वह कूद पडा !—

जयन्त : अरे, वह कौन ?

गोपाल : (इधर-उधर निगाह दौडाकर) क्या बताऊँ ? (जोर-जोर से आहे भरता हुआ) वह कूद पडा—सब देख रहे थे—सब लोग सन्न हो गये थे—गाड़ी की जंजीर भी किसी ने नही खीची—

मंदा : किसी ने जजीर भी नहीं खींची ? (वह 'हाँ' कहता है।) और वह कूद पडा ? (वह 'हाँ' कहता है।) और गाडी नहीं रुकी ?

गोपाल . नहीं। अरे भई, रुकती कैसे ? जजीर ही नहीं खींची थी किसी ने !—पर लोग जब होश मे आए तब जजीर खीची गई और गाडी रुकी।

(वह एकदम कुर्सी पर जाकर बैठ जाता है। जेब से रूमाल निकाल कर माथे का पसीना पोछता है। इस समय तक हेमन्त तटस्थ होकर बैठा है। किसी की तरफ भी नही देख रहा है। लगता है जैसे वह कुछ भी नहीं

सुन रहा है। उसकी आँखे विस्फारित है। घुटनो पर हाथो के पजे रखकर वह बैठा हुआ है।)

मंदा : *आगे क्या हुआ ?*

गोपाल : *होगा क्या ?* (माथे का पसीना पोछता हुआ।) *हम लोग गाडी से उतरे और देखा*—(आह खींचता है।) *बडा भयकर दृश्य था। सब लोग कह रहे थे न जाने कौन है। पर मैं उसे पहचानता था।*

मंदा : *कौन था वह ? क्या जिन्दा था ?*

गोपाल : *नहीं*—

हेमन्त : (जोर से चीखकर) *क्या उसने आत्म-हत्या की ?*

गोपाल : *हाँ। आत्म-हत्या की।* (हेमन्त गोपाल के पास जाता है।)—*उसके बदन पर से गाडी चली गई थी—दोनों पैर कटकर अलग हो गए थे—उसका सिर फूट गया था—बुरी तरह कुचल गया था—उसके टुकडे-टुकडे हो गए थे*—(हेमन्त उदास चेहरा करके गोपाल द्वारा कहे गये वाक्यो को बुदबुदाता रहता है।)

गोपाल : *और फिर मैं वहाँ से निकल पड़ा। हमारी ही चाल मे रहता था वह*—(रुक जाता है।)

जवन्त : *तुम्हारी चाल में रहता था ? कौन था वह ?*

गोप : *वह था चंदू नाटेकर !—भयंकर ! महा भयंकर !! अत्यन्त भयंकर ! ! ! दीवाली नजदीक आ रही है—क्या लग रहा होगा उसकी मा को*—

मंदा : *और पत्नी को ?*

गोपाल : *अजी, उसके पत्नी होती तो वह प्राण ही क्यों देता ? पत्नी नहीं थी इसीलिए तो वह चलती गाडी में से कूद पडा !*

मंदा : *पत्नी नहीं थी इसीलिये कूद पडा ? इसका क्या मतलब ?*

गोपाल · *इसका मतलब ?—वह दूसरी मंजिल पर रहती थी —उसका नाम चन्द्रकला उमासे—उसे चाल में सब लोग बनी कहते हैं—बडी सुंदर छोकरी है। चाल में रहने वाले सभी तरुण उसकी ओर खिंचे हुए थे—उसे अपने दिल दे बैठे थे—उसके पीछे पडे रहते थे। और परसों ही उसका विवाह हो गया—*

हेमन्त : (जोर से चीखकर) *विवाह हो गया ?* (गोपाल का हाथ मजबूती से पकड़कर) *विवाह हो गया ?* (उसकी आवाज थरथराने लगती है ।) *उस लडकी का विवाह हो गया इसलिये वह चलती गाडी से कूद पडा ?* (गोपाल गर्दन के इशारे से 'हाँ' कहता है ।) *हाँ ? कौन था वह ?*

गोपाल · *कोई भी रहे ? क्या चंदू नाटेकर और क्या चदू खाडेकर—चाल के सभी तरुण आत्म-हत्या के लिए निकल पडे थे उस विवाह के कारण—दूसरे सिर्फ मुँह से कह रहे थे—पर सिर्फ यही एक मर्द का बच्चा निकला। उसने न कभी सीना पीटा और न वह किसी से कहने को गया कि मैं आत्म-हत्या करूँगा। जिस दिन उस लडकी का विवाह हो गया, उसी दिन से*

चंदू जो घर से गायब हुआ, सो अब उसका पता चला। मै अभी उसके घर गया था। उसकी माँ दहाड मारकर रो रही है। वह कोई पत्र लिखकर भी नहीं छोड गया। चाल का हर आदमी कह रहा था कि वह सच्चा मर्द का बच्चा निकला! जो दूसरे तरुण आत्म हत्या करने की धमकी दे रहे थे, वे भी कह रहे है कि बेशक सच्चा मर्द का बच्चा यही निकला। (एक लम्बी आह खीचकर नजदीक की कुर्सी पर जाकर बैठ जाता है। हेमन्त की ओर विचित्र दृष्टि से देख कर) इन्हें क्या हो गया है?

जयन्त : कोई खास बात नहीं। ऐसा भयंकर समाचार सुनने पर मामूली आदमी सहज घबडा जाता है—अच्छा, आगे क्या हुआ?

गोपाल : आगे जो होना था वह सब हुआ, पुलिस आई, एम्बूलेन्स आई, तहकीकात हुई, घटे-दो घटे हम लोगों की काफी परेड हुई। वह तो अपनी जान से गया, पर हमें काफी सताया उसने। हमे दो घटो तक चिलचिलाती धूप मे तडपते खडा रहना पडा। पुलिस के जाने पर सवारिया फिर गाडी मे बैठी और हम लोग अपने-अपने घर पहुँचे। चाल मे खबर पहिले ही आ पहुँची थी···

मंदा : गरीब बेचारी मा! दुलहिन का मुँह देखने की आशा लगाये बैठी थी और हाथ का लडका ही खो बैठी। उस लडके का मुँह भी मरते वक्त न देख पाई।

गोपाल : अजी, उसके सिर का तो कचूमर निकल गया था। जब मै पास न होता तो उसे पहचानना ही मुश्किल हो जाता। मजा यह कि उसके पास पर उसका नाम बिल्कुल साफ लिखा हुआ था। लगता था जैसे क्लर्क महाशय ने यह जानकर ही कि वह प्राण देने जा रहा है, उस पर बडी दया कर दी थी। वरना ये क्लर्क लोग पासों पर इस तरह नाम घसीटकर लिखते है कि बाद में वे खुद भी नहीं पढ सकते कि उन्होंने क्या लिख मारा है। (हेमन्त फिर जाकर उसके सामने खडा हो जाता है। क्षण-भर के लिये चुप खडा रहता है।) क्या है?

हेमन्त : वह मरा क्यों?

गोपाल : अरे वाह, यह भी कोई सवाल है? खोपडी की बोटी-बोटी हो जाने पर भी क्या कोई मनुष्य जिन्दा रह सकता है?

जयन्त : (हेमन्त के कन्धे पर हाथ रखकर, उसे एक ओर ले जाता हुआ) यहाँ बैठ जाओ। (वह देखकर कि वह अपनी जगह से टस से मस नहीं हो रहा है, डॉटकर) यहाँ बैठ जाओ, हेमन्त! (हेमन्त धीरे-धीरे जाकर कोच पर बैठ जाता है।)

गोपाल : ऐसा क्यों कर रहे हैं, ये महाशय?

मंदा : ऐसा भयंकर समाचार सुनकर कोमल हृदय वाला मनुष्य सन्न हो ही जाता है। गोपाल राव जी, अब कृपा करके आप यहाँ से चले जाइए। आप अगर

सामने रहेंगे, तो इन्हें याद आयेगी और वे फिर घबरा उठेंगे।

जयन्त : तुम्हें आकर यह खबर सुनाने को दुनिया में क्या और कही जगह नही मिली जो सीधे इसी घर में चले आए?

गोपाल : मुझसे किसी ने कहा कि वह मृत मनुष्य आपके आफिस में काम करता था। इसीलिए मैं—

जयन्त मेरे आफिस में नाटेकर नाम का कोई कर्मचारी नही है—अब आप रास्ता नापिये।

गोपाल : ठीक है, मै जानता हूँ—पर इन महाशय को जरा सँभालिए। मुझे इनके आसार ठीक नजर नहीं आ रहे है। सूसाइड करने वालों में से ही दिख रहे है ये! (बोलते-बोलते चल देता है।)

जयन्त : (हेमन्त से) सुन लिया? इसे भी तुम पर शक हो गया है!

हेमन्त : इसमें शक का क्या सवाल है? सन्तुलन ही खो गया था मेरा। चंदू ही दिख रहा था लगातार मेरी नजरों के सामने। बदन पर से गाडी निकल कर पैर कटे हुए हैं—खोपडी कुचली जाकर टुकडे-टुकडे हो गई है—हँ: ऐसा मैं भी दिखने वाला था—नहीं-नही—आगे इसी तरह मैं भी दिखूँगा—परन्तु अब ऐसा लगने लगा है कि अपना इरादा बदल दूँ।

मंदा : क्या आत्म-हत्या करने का विचार छोड़ दोगे?

हेमन्त : नहीं-नही। बिल्कुल नही। सवाल यह है कि चलती

गाडी से कूद पडूँ या कोई दूसरा तरीका काम में लाऊँ ? हँः ! उसके सिर के टुकडे-टुकडे हो गये थे ? हँः ! और एक लडकी के लिये प्राण दे दिए उसने ! अब उस लड़की को पता चला होगा। न जाने वह यह जानती भी होगी या नहीं कि वह उस से प्रेम कर रहा था ? वह क्या कह रहा था—यही न, कि चाल के सभी तरुण उस लड़की को अपना दिल दे बैठे थे—सभी उसके पीछे पड़े थे। क्या सभी चालो में इसी तरह की लडकियाँ होती हैं ?

मंदा : याने ? क्या तुम्हारा मामला भी कुछ इसी प्रकार का है ?

हेमन्त : हाँ, हाँ ! मेरा मामला भी इसी प्रकार है। और दूसरी बात यह हो गई है कि उसने जो विवाह किया है, वह भी हमारी चाल के ही एक तरुण से किया है और यही मुझसे बरदाश्त नहीं हो रहा है। मै भी उसी चाल में रहूँगा, रोज उन लोगों को आते-जाते, हँसते-खेलते देखूँगा। शायद उस वक्त वे दोनों मेरी हँसी भी उडाएँगे। अब बताओ यह मुझसे कैसे बरदाश्त होगा ? इसीलिये मुझे लग रहा है कि कहीं जाकर अपने प्राण दे दूँ।

जयन्त : तुम पागल हो, हेमन्त। अभी तक मैंने तुमसे कहा नहीं था, पर अब कहता हूँ…

हेमन्त : तुम मुझसे कुछ न कहो, जयन्त…

मंदा : वे ठीक कहते है। आप उनसे कुछ भी न कहें। मनुष्य के मस्तिष्क में जिस समय बदले की भावना

सरसराती रहती है, उस समय उसे उपदेश या सलाह न देना ही अच्छा। ऐसे समय उसे उपदेश देने के बजाय जो वह कहे उसके लिए 'हॉं" कहना ही सब से अच्छा होता है।

जयन्त . याने ? अगर वह प्राण देने जा रहा हो, तब भी ?

मंदा . हॉं । ऐसे समय भी। ऐसे समय उस आदमी का निश्चय पक्का हो गया होता है। कोई यदि उससे कहे कि यह मत करो, तो उसे वह बात सुनाई ही नही देती ..

हेमन्त : मंदा जी बिल्कुल ठीक कह रही हैं। अभी तक तुम से जो-जो मैने कहा, वह सब तुम चुपचाप सुनते गये इसीलिये मै कहता गया। अगर तुम न सुनते तो मैं यहाँ से उसी वक्त चल देता और मैं भी शायद अभी तक किसी लोकल गाडी के नीचे—

मंदा : राम ! राम ! राम ! ऐसी अशुभ बातें नही कहते, हेमन्त जी !

हेमन्त : और जिस तरह एक ने आकर आपको चदू का हाल सुनाया, उसी तरह कोई दूसरा आकर मेरा भी हाल तुम्हें सुनाता। और फ़िर तुम सब लोग इसी तरह—

मंदा : नही जी। जाने कहाँ का नाटेकर था वह—कल अखबारो में भी उसकी खबर छप जाती और उसे हम बिल्कुल निर्विकार मन से पढते। शायद उसे पढकर हॅसते भी। शायद उसकी खिल्ली भी उडाते। यह तो रोज का किस्सा है। रोज मरे उसे कौन रोए ? अख-

वारो मे रोज ही दुर्घटना या आत्म-हत्या से होने वाली मौतो की खबरें छपा करती है। उन्हें पढकर क्या कभी कोई रोया है ?

हेमन्त : याने क्या तुम रोतीं ?

मंदा : अब वह कहने से क्या फायदा ?

हेमन्त : शायद तुम्हारा यह ख्याल है कि पहिले मै मर जाऊँ और फिर उसके वाद आकर देखूँ कि तुम रो रही हो या नही ?

मंदा : वह आप कैसे देख पाएँगे ?

हेमन्त : यह कौन कह सकता है ? हो सकता है मरने के बाद भी मै शायद देख सकूँ कि तुम लोग क्या कर रहे हो ? कम-से-कम मेरे दिल में जरूर ऐसा आ रहा है कि मै देख सकूँ, इस में शक नहीं। पर अन्त मे यदि 'आप मरे और जग डूबा' वाली कहावत ही सच होनी हो, तो फिर आप रोवें या न रोवें, मेरे लिये दोनों बराबर ही है।

जयन्त : तो मतलब यह कि आत्म-हत्या करने का तुम्हारा विचार अभी बदला नहीं है ?

हेमन्त : बिल्कुल नही बदला है। विचार नहीं बदला है। पर उसे अमल में लाने का तरीका बदलने वाला है। मै सोच रहा हूँ कि पानी में डूबकर मर जाना अच्छा रहेगा। दम घुटकर प्राण, तुरन्त निकल जाएँगे। अगर जहर खाऊँ तो डाक्टर कहते हैं कि यातनाएँ बहुत होगी. और अँतडियाँ बुरी तरह मरोड दी

जाएँगी। आयुर्वेद भी यही कहता है। इसीलिए जहर खाकर आत्म-हत्या करने का तरीका त्याज्य है। रेलगाड़ी वाला तरीका पहिले ही रद्द कर चुका हूँ। (सोचकर) अब सिर्फ दो ही तरीके हैं। गले में स्वयं फाँसी लगा लेना अथवा पानी में डूबकर दम घोंट लेना। इन दोनों में पानी में डूबकर मर जाना ही मेरे लिए सुखकर होगा। वैसे तैरते समय एक बार मैं पानी में डूब भी चुका हूँ। उस समय की थोडी-थोड़ी याद बनी है मुझे

जयन्त : क्या तुम्हें तैरना आता है ?

हेमन्त : अच्छी तरह आता है। समुद्र में कितना भी तूफान उठा हो, मैं बड़ी सरलता से उसमें से तैरता हुआ उरण तक चला आऊँगा—

जयन्त : फिर डूबकर आत्म-हत्या करने का तरीका तुम्हारे काम का न रहेगा। एक डुबकी के बाद जहाँ तुम ऊपर आये कि एकदम तैरने लगोगे। (इतने समय के बाद पहिली बार ही हेमन्त के चेहरे पर थोड़ी हँसी दिखाई देती है।) (हँसकर) देखो, तुम्हें हँसी आ गई! ऐसी बात है यह !

हेमन्त : हाँ मित्र ? ऐसा हो जाएगा जरूर !

मंदा : तो मैं सोचती हूँ कि तुम्हारे लिये जहर खाना ही ठीक रहेगा। मेरे ख्याल से तुम सायनाइड खा लो। कहते हैं कि उसकी एक बूँद भी जीभ को लग जाए तो आदमी फौरन मर जाता है।

हेमन्त : पर उससे यातनाएँ होती है या नहीं, यह कौन बतायेगा ?

जयन्त यह तो डाक्टर भी नहीं बता सकेगा।

हेमन्त · कुछ भी हो। प्राण दूगा यह तो तय ही हो चुका है। अब तय करने को सिर्फ यह रह गया है कि वे किस तरह दिये जाएँ। पर अभी एक बात करने को और बची है। उसे किये बगैर मरते नहीं बनता।

मंदा : क्या उससे मिलना चाहते हो ?

हेमन्त तुमने यह कैसे ताड लिया, मंदा जी ?

मंदा . अजी जनाब, मेरी औरतों की नजर है। हम स्त्रियों की अटकलें कभी चूकती ही नहीं। हम सच्ची व्यवहार-कुशल जो होती हैं —

जयन्त . कहते है कि स्त्रियाँ बडी भावनाशील होती है, सो यह झूठ थोडे ही है ?

मंदा यह बिलकुल झूठ है। पुरुषों पर ही भावनाओं का नशा चढ़ जाता है और वे उस आरोप को स्त्रियो पर लाद देते है। स्त्रियाँ यदि व्यवहार-कुशला न होती तो दुनिया की गृहस्थियाँ कभी चलती ही नहीं। हम हमेशा यही मानती है कि दो और दो चार ही होते है। इसीलिए संसार की गाडी चल रही है।

जयन्त : अब तुम कह रही हो इसीलिए माने ले रहा हूँ। वरना मुझे यह कुछ जँच नहीं रहा है। मै कहता हूँ—

हेमन्त : अच्छा, अब यह बहस बन्द करो और पहिले मेरी सुनो, मदा जी। इस विषय में जो तुम कहोगी वही मैं मानूँगा। (एक क्षण भर के लिए रुककर) बताइए, क्या मै जाकर उससे मिलूँ ?

मंदा : देखिए हेमन्त जी, वह कौन है यह मैं नही जानती। उसके स्वभाव का भी मुझे पता नहीं। तुम्हारा उससे प्रेम है यह मुझे अभी तुम्हीं से मालूम हुआ है। पर वह तुम्हें किस नजर से देखती है यह तुमने अभी हमें नहीं बताया—शायद यह तुम्हें भी मालूम न हो। और मालूम भी होगा तो मैं कहती हूँ कि जो सवाल है वह यह है कि विवाह हो जाने के बाद उसका मन किस तरफ झुक रहा है, यह कैसे मालूम हो ? पहिले तो स्त्रियाँ ऐसे मामलों में मामूली बातचीत से अपने मन की कभी थाँह ही नही लगने देतीं। उसमें भी तुम्हारी जो वह कौन है—

हेमन्त : ठहरो मदा जी, वह कौन है यह आप जानती है।

मंदा : मै जानती हूँ ? क्या वह मेरे पहचान की है ?

हेमन्त : हाँ, तुम्हारे पहचान की है। यही नहीं, बल्कि तुम्हारी घनिष्ठ सहेली है। तुम्हारे कारण ही तो मेरी और उसकी पहचान हुई—

मंदा : एक ही चाल में रहने के कारण नही ?

हेमन्त : नही। बहुत अच्छी-अच्छी लडकियाँ होती है एक चाल में। वे आती-जाती हैं, हँसती-खेलती हैं परन्तु उनकी पहचान नहीं हो जाती। फिर उनके स्वभाव

का पता कैसे चल सकता है ? परन्तु मेरी वह तुम्हारे पास आती थी इसीलिए उससे मेरा परिचय हुआ ।

मंदा : न जाने कितनी लडकियाँ मेरे पास आती रहती है ।

हेमन्त : उन्हीं मे की है वह एक ।

मंदा : (जयन्त के पास जाकर जो इन दोनो की बातचीत के समय चुपचाप एक पुस्तक के पन्ने पलटाता रहता है) अजी ! अब जरा इधर आइए । यह मामला तो हमारे ही मत्थे पड रहा है । ये कहते है कि वह लडकी हमारे घर आनेवाली लडकियो में से ही है ।

जयन्त : (बैठे-बैठे ही) कौन सी लडकी ?

मंदा : अजी यह इनका प्रेम-काड है । आपका क्या अंदाज है ? कौन लडकी होगी वह ? ये कहते है कि उस लडकी की और इनकी पहचान यही हमारे घर में हुई है । क्यों हेमन्त जी, यही न ? (उसके उत्तर की प्रतीक्षा न कर) हमारे यहाँ आनेवाली लडकियों मे से फिलहाल ही किन-किन लड़कियों के विवाह हुए है ?

जयन्त : जरा ठहरो—देखकर बताता हूँ । (मेज के दराज से निमन्त्रण-पत्रिकाओ का एक पुलिन्दा निकालकर उन्हें पलटाता है ।) जरा बताओ तो हेमन्त, कब हुआ था उसका विवाह ?

हेमन्त : इससे उसका नाम ही बता देना क्या बुरा है ?

जयन्त : वह बात नही मै कहता हूँ—

हेमन्त : मैं जरा लम्बा समय ही बताता हूँ । डेढ महीने के भीतर—या तो आज से दो दिन पहले ही हो सकता

है या डेढ महीने पहिले—पर डेढ़ महीने से अधिक नहीं—

मंदा : उस लडकी के विवाह के आगे-पीछे और किन-किन लड़कियों के विवाह हुए थे ?

हेमन्त : यह सवाल तो अदालत में भी नहीं पूछा जा सकेगा। अब आप ही अपनी अक्ल दौड़ाइए। (सामने दृष्टि जाते ही उसे एक मनुष्य भीतर आता हुआ दिखाई देता है। उसे देखते ही वह झट से एक ओर हट जाता है और बोलना बन्द कर देता है।)

विजय : (दरवाजे से प्रवेश करते-करते) हलो जयन्त ! हलो मंदा भाभी ! क्या हो रहा है ? और ये कौन महाशय है जो बिल्कुल मुँह फुलाये खडे हुए है ?

जयन्त : ये हमारे एक मित्र है विजय, आओ बैठो—देखो मंदा, अब तो भई हम चाय चाय पियेंगे। आत्म-हत्या की बातें सुनने के बाद—(पीछे की तरफ खड़ा हुआ हेमन्त पेट दाबकर ओ-ओ करके चीख उठता है।) तुम्हें क्या हो गया जी ?

मंदा : (दौडकर उसके पास जाती है, धीरे से) क्या हुआ ?

हेमन्त : (उसके कान से लगकर) इस पराये आदमी के सामने तो ये बातें मत करो। (जोर से) पेट मे बड़ा दर्द हो रहा है। अभी तक बरदाश्त करता रहा, पर अब बरदाश्त नहीं हो रहा है। मुझे कही लेटने के लिए जगह बता दो !

जयन्त : अरे भई, तो हमारे कमरे में जाकर बिस्तर पर लेट

जाओ न और देखो मन्दा, इन्हें थोडा सोडा-बाई-कार्ब दे देना पानी में घोलकर।

(उसके बोलते हुए ही मदा 'चलिए' कहती है और उसके हाथ पकडकर उसे भीतर ले जाती है।)

जयन्त : वडा विक्षिप्त है यह मनुष्य। उसे शायद पेट की बीमारी है। सोडा-बाई-कार्ब ले लेने से उसे कुछ अच्छा लगेगा। हाँ, यहाँ कैसे पधारे इस समय विजय जी ?

विजय : क्या अभी तक वह खबर अखबार में नहीं आई ? हमारी चाल की चौथी मजिल पर एक मनुष्य था। जवान था। बी० ए० था। नौकरी भी अच्छी थी—

जयन्त : था ? याने, क्या वह अब नहीं है ?

विजय . वही बताने को तो आया हूँ। अब नहीं है, यह सच है। पर क्यों नही है यह जब सुनोगे तो तुम दंग रह जाओगे।

जयन्त . मतलब ?

विजय . मतलब क्या ? जान दे दी उसने। आत्म-हत्या कर ली। सूईसाइड कर डाला।

जयन्त : सूईसाइड कर डाला ? कैसा ? और क्यों ?

विजय वरली की चौपाटी पर गया और समुद्र मे कूद पडा— (भीतर से हेमन्त बड़े जोर से 'अरे बाप रे' कहकर चिल्लाता है। मदा उसे चुप रहने को कह रही है, यह बाहर सुनाई पडता है।) कौन चिल्लाया ? क्या तुम्हारा वह दोस्त ?

जयन्त . हाँ। उसके पेट का दर्द बढ गया होगा।

विजय : हो, तो मैं क्या कह रहा था ?—हाँ, वह समुद्र में कूद पड़ा। डुबकी से जब ऊपर आया तो तैरने लगा। तब उसे याद आई कि उसे जान देनी है। वह फिर किनारे पर आया। एक बड़ा-सा पत्थर उसने अपनी कमर से बाँधा और फिर कूद पड़ा। अबकी बार वह जो डूबा सो फिर ऊपर ही नहीं आया।

जयन्त : फिर यह पता कैसे चला कि यह वही मनुष्य था ?

विजय . उसे कूदते हुए शायद किसी ने देख लिया था। वह चिल्ला पड़ा और वहाँ बहुत से लोग आकर इकट्ठा हो गए। कुछ लोग समुद्र में कूद पड़े और पानी के भीतर उसकी कमर से पत्थर छुड़ाकर उसे ऊपर ले आए। थोड़ी-थोड़ी साँस चल रही थी। पर डाक्टर आने से पहिले ही उसकी जान निकल गई थी।

जयन्त : पर उसने यह आत्महत्या क्यों की ? कोई पत्र-वत्र लिखकर छोड़ गया था क्या वह ?

विजय : हाँ। उस पत्र से ही तो पता चला और इसीलिए मैं दौड़ा हुआ तुम्हारे पास आया हूँ। उस पत्र में उसने लिखा है कि वह पुष्पा से प्यार करता था। चूँकि पुष्पा का विवाह हो गया इसलिए उसने आत्महत्या की।

जयन्त : पुष्पा से ? याने ? क्या तुम्हारी पत्नी से ?

विजय : हाँ।

(भीतर हेमन्त 'अरे बाप रे' कहकर, फिर चीख उठता है। मदा दूर से 'ठहरो-ठहरो अभी चाय उतारकर' कह रही है, ऐसा सुनाई पड़ता है।)

जयन्त : फिर पुलिस ने क्या तुम दोनो को बुलाया था ?

विजय : हाँ भई, बुलाया था न ! बडे उल्टे-सीधे सवाल कर रहे थे वे लोग—मै तो बिल्कुल परेशान हो उठा था। पर हमारी पुष्पा बडी पक्की है, भई। उसने वडे मुँह-तोड जवाब दिए—(मदा ट्रे में चाय के दो प्याले लेकर आती है और एक-एक प्याला दोनो को देती है।) और आप नही ले रही हैं क्या, मंदा भाभी ?

मंदा . मुझे बार-बार चाय पीना पसन्द नही।

जयन्त यह सुना तुमने एक और मजा ? एक ही बैठक में आत्म-हत्या के दो समाचार सुन लिए हमने ! भगवान जाने क्या तीसरा भी अब सुन पडेगा। ये विजय बाबू कह रहे हैं—

मंदा : मै सब सुन चुकी हूँ भीतर से। कैसे कायर होते हैं ये लोग ? आखिर क्या सोचते है वे ? क्या वे यह सोचते हैं कि आत्म-हत्या करने से उस लडकी के दिल पर गहरा असर होगा और इस तरह उससे बदला ले लेंगे ?

विजय : भगवान जाने वे क्या सोचते है। परन्तु उन लडकियों के मन पर उसका रत्ती-भर भी असर नहीं होता यह बेशक मैंने साफ-साफ देख लिया !

मंदा · मतलब ? क्या पुष्पा को इस आत्म-हत्या से कोई दुख नहीं हुआ ?

विजय · बिल्कुल नही। वह अभी आ ही रही है। हम दोनों साथ ही आये थे। नजदीक की चाल में अपनी एक

सहेली से बातें कर रही है वह । (भीतर से पुनः हेमन्त 'अरे बाप रे' कहकर चिल्लाता है, ऐसा बाहर सुनाई पडता है ।)

मंदा क्षमा कीजिए । अभी आई । जरा देख आती हूँ उन्हें (भीतर जाती है ।)

जयन्त : बडे कोमल हृदय का है वह । बीमारी में बहुत जल्द घबडा जाता है । फिर पेट की बीमारी एक ऐसी बीमारी होती है-। उसकी कभी थाह ही किसी को नहीं मिल पाती (हँसकर) बचपन में, जिस दिन स्कूल जाने की इच्छा न होती थी, उस दिन मै यही बहाना करता था कि पेट में दर्द है । (जोर से हँसकर) और इस बीमारी के लिये दवाएँ भी कडवी नहीं होती थीं—बहुत ही हुआ तो सोडा-बाई-कार्ब दे दिया जाता था । जाने कितने सेर सोडा-बाई-कार्ब पचा डाला है मैने उन दिनों—हॉ, क्या कह रहे थे तुम ?

विजय . हाँ ! तो मै क्या कह रहा था ?—क्या कह रहा था ! —हाँ—पुष्पा अब आती ही होगी । मैंने कभी सोचा न था कि वह इतनी ढीठ है । पुलिस को तडातड जवाब दे रही थी । मुझे लगा कि उस आदमी ने जान दे दी, सो अच्छा ही किया । आगे चलकर यदि यह उससे कहीं जीने में मिल जाती और वह इससे कुछ बातें करता और यह उसे तड़ातड कुछ जवाब दे देती, तो बेचारा वहीं हार्ट-फेल होकर मर जाता । ऐसे कमजोर दिल वाले लोग ही आत्म-हत्या करते

है। कच्चे दिल का मनुष्य ही आत्म-हत्या करने की ना-समझी कर सकता है, अब मुझे पता चला है कि चाल के बहुत से मजनू पुष्पा के पीछे चक्कर काट रहे थे—

जयन्त . और क्या तुम नहीं काट रहे थे ?

विजय . मै ? (जोर से हँसकर) मुझे कहाँ वक्त था ऐसे लव्ह अफेयर्स करने को ?—इसलिये—हाँ—क्या कह रहा था मै—हाँ. मुझे जिस तरह प्रेम-प्रदर्शन करने के लिए वक्त नहीं था, उसी तरह मुझे यह पसन्द भी न था—

जयन्त . फिर तुम दोनों का विवाह किस तरह हुआ ?

विजय : बिल्कुल पुरानी प्रथा के अनुसार। मा को लडकी पसन्द आ गई थी। बहुत दिनों से मा की नजर थी उस पर ··

जयन्त : मतलब यह कि तुम्हारे परिवार में से किसी-न-किसी की नजर थी ही उस पर ?

विजय · हाँ। मा की नजर थी। वह उसकी मा के पास गई और उसने विवाह का प्रस्ताव किया—उसकी मा राजी हो गई। विवाह तय करने से पहिले मेरी मा ने मुझसे पूछा भी नहीं था। वह एकदम बोली—'मैंने पुष्पा से तुम्हारा विवाह तय कर दिया है।'—मैंने 'हाँ' कह दिया। मैंने उस लड़की को पहिले देखा ही था—(मदा और हेमन्त भीतर से बाहर आते हैं।) कौन ? हेमन्त ?

हेमन्त : (गम्भीरता से) हाँ। मै हेमन्त ही हूँ—

विजय : तुम्हारे पेट का दर्द कैसा है ?

जयन्त : अरे, तुम दोनों तो पहचानते हो एक दूसरे को।

हेमन्त · हाँ। (विजय से) मेरे पेट के दर्द के बारे में पूछ रहे हो ? मेरे पेट का दर्द अच्छा नही हो सकता। अब चौबीसों घंटे मेरे पेट में दर्द होता ही रहेगा। (उदास भाव से हँसता है।) पेट का दर्द—! यहाँ तो कलेजा टूट गया है—कलेजे के इस तरह टुकडे-टुकडे हो गए है कि उस दर्द के सामने पेट का दर्द किस गिनती में है ? और मेरे इस पेट के दर्द का कारण तुम—तुम हो।

विजय : मैने क्या किया भई ?

हेमन्त : तुमने विवाह किया। पुष्पा से विवाह कर लिया।—पुष्पा से तुम्हारी पहचान तक नहीं थी। जीना चढते समय तुमने उसके बदन से अपना बदन कभी घिसा तक नही था। जब वह जीने से उतरती थी, तो उसके पीछे रहकर तुमने उसकी वेणी की सुगन्ध नही ली थी, कभी उससे बोलने की कोशिश नही की थी। उसके हाथ से गिर पडी हुई पुस्तक को उठाकर चट-से उसे कभी दी थी तुमने ? जाते-जाते उसकी चप्पल को ठोकर मारकर कभी 'सारी' कहा था तुमने ? तुम्हारे जैसे अरसिक, रूखे, हृदय-शून्य, बुद्धू और रद्दी—

विजय : पर उसने आखिर विवाह तो मुझसे ही किया न ? मेरे ऐसा कुछ न करते हुए भी उसने मुझसे ही विवाह

किया । वैसे देखा जाए तो हम दोनो का कोई पूर्व परिचय भी नहो था—

(पुष्पा खट-खट जूते बजाती हुई भीतर आती है। आते समय बोलती रहती हे। कोने मे छतरी और हैडबैग रखते हुये भी वह बोलती रहती है।)

पुष्पा . सुनती हूँ आज एक और मजनू ने अपनी जान दे दी। नाटेकर नाम बताते है उसका ! (हेमन्त की ओर देख-कर और चोककर) अच्छा, आप है?

हेमन्त . हाँ! मै। आज दो आत्म-हत्याएँ हो गयी—एक ही समय में—जाने क्यों मेरी अक्ल पर पत्थर पड गए, जो मै यहाँ चला आया? यहाँ न आता, तो तीसरी आत्म-हत्या का समाचार भी तुम्हें सुनने को मिल जाता।

पुष्पा . (कहकहा लगाकर) क्या सच कह रहे हो? फिर अब कब इरादा है—

विजय : ठहरो पुष्पा। यूँ कुछ अशुभ बातें न कहो।

मंदा . पुष्पा, यहाँ आओ। मेरे पास बैठ जाओ। और हेमन्त बाबू, तुम यहाँ से चले जाओ।

हेमन्त . (ओठ चबाता हुआ) औरतों की जात!

जयन्त . (जरा क्रोध से) मै भी कहता हूँ। हेमन्त, तुम चल दो यहाँ से।

हेमन्त · कहाँ जाऊँ?

जयन्त : जहाँ तुम्हारी इच्छा हो।

पुष्पा . मरघट में चले जाओ।

हेमन्त : हाँ, हाँ। मरघट मे भी चला जाऊँगा। पर खुद अपने को जलाने के लिये नही, पर किसी दूसरे को जलाने के लिए। मुझे मरघट में जाने के लिये कह रही हो? जिस दिन तुमने इससे विवाह कर लिया उसी दिन मैं मर चुका हूँ—

जयन्त . अच्छा? तो यह मामला है?

मंदा : हाँ। हेमन्त का प्रेम-काड यही है। अभी-अभी उन्होंने ही मुझे यह सब भीतर बताया था।

जयन्त : अरे भई, ये सभी प्राण देने वाले आज यहीं आकर क्यों इकट्ठा हो गए? (हेमन्त से) देखो जी हेमन्त, यहाँ बैठना चाहते हो, तो ऐसी बातें बंद कर दो—और अगर ऐसी बातें करनी है, तो यहाँ से चलते-फिरते नजर आओ। समझे?

पुष्पा : और मेरे पैर की चप्पल खाने से पहिले भाग जाओ।

हेमन्त : (कुछ सनक मे आकर) अरे वाह, भाग जाओ! मुझ से 'भाग जाओ' कहा—'भाग जाइये' नहीं कहा? पुष्पा! पुष्पा! तुम्हारे इन उपकारों का बदला कैसे चुकाऊँ?

पुष्पा . जाकर प्राण दे दो? आत्म-हत्या कर रहे थे न?

हेमन्त . हाँ। आत्म-हत्या करने वाला था। पर अब वह विचार बदल दिया है।

जयन्त : सो क्यो, भई ?

हेमन्त : नाटेकर की खोपडी फूटकर टुकडे-टुकडे हो गई। वह दूसरा आदमी पानी में कूद पडा और तैरने लगा। और मै आज जहर खाने वाला था। कौन जाने कोई कैमिस्ट मुझ पर शक करके जहर के बदले मुझे अल्कोहल ही दे देता।—इसलिये छोडूँ यह विचार। अब वैसी कोई बात मै नहीं करूँगा। कुछ देर के लिए मै यहाँ बैठना चाहता हूँ।

जयन्त · तो फिर बैठे रहो।

पुष्पा : किस लिये ?

हेमन्त तुमसे बातें करने के लिए।

विजय (उठकर खडा होता हुआ) पुष्पा चलो, अब हम यहाँ से चल दें।

पुष्पा · (हँसकर) अजी, बैठिए भी ! हूँ अच्छा, हेमन्त जी, आप क्या पूछना चाहते है मुझसे ? पूछिए।

हेमन्त : (आँखे बन्द करके, गर्दन हिलाता हुआ) 'हेमन्त, क्या पूछना चाहते हो ?···हेमन्त क्या पूछना चाहते हो ? वाह, वा ! पूछना चाहते हो !'

(पुष्पा उसकी ओर क्रोध से देखती है और अपने पैरो के पास हाथ ले जाती है।) नही, नहीं। ठहरो। एक ही प्रश्न पूछना चाहता हूँ। यह विजय और हम सब एक ही चाल में रहते है। यह विजय तो तुम्हें पहचानता भी नहीं था। और क्या तुम पहचानती थीं इसे ?

पुष्पा : *बिल्कुल नही ।*

हेमन्त : *मैं तुम्हें पूजता था ।—(पुष्पा हँसती है ।) हँसो मत । अपने हृदय-कमल के संपुट में तुम्हारी मूर्ति की प्रस्थापना करके तुम्हारा पूजन कर रहा था—(वह और भी जोर से हँसती है ।) नित्य नियम से पूजन कर रहा था । सडक में चलते समय हमेशा तुम्हारी सेवा करने का अवसर ले रहा था—सदा ऐसी परिस्थिति निर्मित करता रहता था जिससे मेरी सेवा तुम तक पहुँचे । तुम किसी से बातें करने लगतीं, तो कान खडे कर, तुम्हारी बातें सुनता रहता और तुम्हारे वे मीठे-मीठे बोल हृदय-सपुट मे संचित कर रहा था—*

विजय : *चलो पुष्पा, इस पगले की बातों में क्या धरा है ? क्योंजी हेमन्त, किस उपन्यास के वाक्यो को रट डाला है तुमने ?*

हेमन्त : *नहीं रे भाई, नहीं ! ये उधार के वाक्य नही है । ये उद्गार स्वाभाविक रूप में स्वय स्फूर्ति से मेरे हृदय के अन्तर्मन के ज्ञान से निर्मित हुए है । सुना विजय ? तुमने जिससे विवाह कर लिया है उस पुष्पा से—उस पुष्पा से, सच कहता हूँ, मै प्यार करता हूँ—*

विजय : *यह मुझसे कह रहे हो ? उसके पति से कह रहे हो ?*

हेमन्त : *शॉ का कण्डिडा पढ़ा है तुमने ? उसमे लेखक ने एक कवि निर्मित किया है । वह अपनी उम्र की अपेक्षा दूनी उम्र की युवती पर—युवती नही, स्त्री पर प्रेम करता है और यह बात वह उस स्त्री के पति से साफ-साफ कह देता है । शॉ की उसी निर्मिति का मै प्रत्यक्ष*

अवतार हूँ। उस कवि को निर्मित करते समय शॉ ने—

विजय . (क्रोध से) शॉ उड गया।

पुष्पा . उड नही गया—वह गया स्वर्ग मे या किसी गढे में—इसे कौन कह सकता है।

जयन्त · वह गढे मे ही गया यह सच है। उसे दफनाया गया था।

हेमन्त . बात मत उडाओ। मुझे बताओ पुष्पा, तुमने विजय से क्यो विवाह किया ?

पुष्पा . बताऊँ ? सुनेंगे आप ? मै जो बताऊँगी उसे सुनकर आपको सतोष हो जाएगा ?—

हेमन्त एक शर्त पर ! सन्तोप हो या न हो। पर अब से मुझे आप-आप न कह कर तुम कहती जाओ।

पुष्पा : ठीक है। मेरा क्या जाता है ? मैं तुम्हें हैम्या भी कह दूँगी। मेरे कुत्ते का नाम है ही हैम्या। पर हाँ, अगर मै कही उसे पुकारूँ तो तुम मत चले आना। हेमन्त बेचैन हुआ दिखाई देता है। अच्छा, अच्छा मै बताती हूँ। सुनो। बात यह है कि तुम और तुम्हारे जैसे बेवकूफों ने जो वाहियात हरकतें मचा रखी थी वैसी कोइ हरकत इन्होंने नही की। इसीलिए मैंने इनसे विवाह किया। तुम्हारी हरकतें दिन-ब-दिन बढ़ रही हैं, पर इन्होंने एक दिन भी मेरी ओर आँख उठाकर नही देखा। इसीलिए मैंने इनसे विवाह किया। (विजय से) ठीक है न जी ? (वह हँसता हुआ गर्दन के इशारे

से 'हाँ' कहता है)। उनकी माँ यदि मेरी मँगनी न करती, तो मै स्वयं जाकर अपनी माँ से कहती कि मै इनके साथ विवाह करना चाहती हूँ—

हेमन्त . यह क्या कह रही हो ? क्या तुम अपनी माँ से जाकर कहती ? (आश्चर्य से दग होकर) विवाह का प्रस्ताव इनकी माँ के पास जाकर करती ? खुद इनके पास जाकर नहीं कहती ?

पुष्पा हाँ। इनकी माँ के पास जाकर ही प्रस्ताव करती और इनसे न पूछती।

हेमन्त : और अगर ये इकार कर देते तो ?

पुष्पा : ये इकार कभी करते ही नहीं। (विजय से) क्यो जी, क्या आप इंकार कर देते ?

विजय : नहीं। मै क्यो इंकार करता ? यदि माँ मुझसे कहती कि पुष्पा के साथ विवाह कर लो तो मै अपनी माँ की आज्ञा पालन ही करता। यदि माँ ने मुझसे मेरी राय पूछी होती तो मै उनसे स्पष्ट शब्दो मे हाँ कह देता।

हेमन्त : क्या केवल इसलिए कि वह माँ की आज्ञा थी ?

विजय : नहीं। ऐसी कोई बात नही—सुनो जयन्त, सुनो मंदा भाभी, अब तुम सब यहाँ हो। इसलिए सारी लाज ताक पर रखकर बताता हूँ। ये बेवकूफ इसके आस पास चक्कर काटते थे। मैने कभी चक्कर नही काटा। परन्तु यह सच है कि मै भी इसकी ओर आकर्षित था। कोई यदि मुझसे इस विषय में पूछता तो मैं यह कभी स्वीकार न करता कि पुष्पा की ओर मेरा दिल

खिच रहा है। बात यह थी कि जिस कारण से ये बेवकूफ पुष्पा की ओर आकर्षित हो रहे थे उस कारण के लिए मै इसकी ओर आकर्षित नहीं हो रहा था। (पुष्पा से) यह बात मैंने तुमसे भी पहिले कभी नहीं कही। आज प्रथम बार ही तुम्हें बता रहा हूँ कि मै तुम्हारी ओर क्यो आकर्षित हो रहा था ? सुनो हेमन्त, मै बराबर देखता रहता था कि तुम लोग इसे बहुत सताते थे, परन्तु यह तुम्हारे वश में नहीं हुई। यही नहीं बल्कि अन्य कई बेवकूफ लडकियों की तरह इसने तुम्हें कभी खिजाया भी नही। इसीलिए उसके प्रति मेरे मन में आकर्षण जाग उठा था—सुना पुष्पा, कभी-कभी मुझे ऐसा लगता था कि इन उजड्डों की तरह नही, बल्कि अधिक सभ्यता से तुम्हें मिलूँ और तुमसे कुछ बातें करूँ।

पुष्पा : फिर ऐसा क्यो नहीं किया आपने ?

मंदा : हाँ, सच तो है। क्यों नहीं किया तुमने वैसा ? (जयन्त की ओर अंगुली दिखाकर) ये मुझसे पहिली बार बिल्कुल इसी तरह से मिले थे। बाकी के लडके मुझे काफी सता रहे और ये

विजय : फिर भी यह मुझ पर शक करने लगती। यह मुझे गलत समझ बैठती। इसे लगा होता कि इन बेवकूफों की अपेक्षा मै अधिक चालबाजी से इसके निकट होना चाहता हूँ—

पुष्पा : आप बिल्कुल ठीक कहते है। मुझे ऐसा ही लगता।

विजय : इसीलिए मैंने वैसा नहीं किया। समझे हेमन्त? इसी-लिए मैंने वैसा नहीं किया।

हेमन्त : मूर्ख हो तुम। तुमने इससे विवाह किया। इस पर अपना अधिकार प्राप्त किया, पर उसका प्रेम प्राप्त नहीं किया। वह मुझे हेम्या कहेगी। वह अपने जिस कुत्ते को गोद में बिठाती है, उस कुत्ते का दर्जा उसने मुझे दिया है। यह प्रेम तुम्हारी किस्मत में नहीं और न कभी तुम्हें मिल सकेगा। जाओ, मजे में गृहस्थी सजाओ, बच्चे पैदा करो और मर जाओ एक दिन। स्वर्गीय प्रेम की प्राप्ति तुम्हारे भाग्य में नहीं!—जयन्त, मंदा जी, विजय, मै जा रहा हूँ। (पुष्पा के सामने जाकर) पुष्पा—(गद्गद् हो जाता है। उसके मुँह से शब्द बाहर नहीं निकलते) पुष्पा!

पुष्पा : (रुखाई से) क्या है?

हेमन्त : पुष्पा, मै कृतार्थ हो गया! (कंठ भर आता है) पुष्पा, मैं जाता हूँ अब।

पुष्पा : क्या प्राण देने? तीसरी आत्म-हत्या करने?

हेमन्त : नहीं पुष्पा! अब क्यो प्राण दूँगा? अब मै अमर हो गया हूँ, अनत हो गया हूँ, अनंत के उस पार पहुँच गया हूँ। अब प्राण देना या प्राण लेना यह कल्पना ही कहीं नही रह गयी है। (सब लोग कहकहा लगा-कर हँस पडते है।) हँसो मत! ठहरो! हँसो मत! यह हँसने की बात नहीं। यह गद्य नही, यह काव्य है—यह काव्य का परम प्रकर्ष है। इस प्रकर्ष के आगे

विवाह नहीं, गृहस्थी नही, संतति नहीं और संपत्ति भी नहीं।

जयन्त : *फिर क्या है ?*

हेमन्त : *क्या है यह अगर बताया जा सकता तो भाषा के शब्द अधूरे न पडे होते। तुम बेवकूफों के सामने क्या बोलूँ—*

(जाने लगता है। पीछे मुडता है। एक बार सब की ओर देख लेता है। और 'पुष्पा' कहकर आर्त स्वर में, बल्कि काव्य-गायन के स्वर में पुकारता है और झटके-से चल देता है।)

(सब हँसने लगते हैं)

जयन्त : *देख लो, ये हैं आज के तरुण !*

पुष्पा : *हम सब भी तो तरुण ही हैं। क्यों जयन्त जी, है न ? ये सब नाटक हैं—निरे ढोंग हैं।*

मंदा : *कब बंद होंगे ये ढोंग ?*

[परदा]

४

चंद्र चकोरी

[चन्द्रकान्त अपने घर की अटारी की खिड़की मे खड़ा है और खिड़की से झाँककर बाहर देख रहा है। सड़क से जा रही मोटरो की आवाज दूर से सुनाई पड़ रही है। वह किसी गीत का एक चरण गुनगुना रहा है। बीच ही मे रुककर 'शुः शुः' करके ताली बजाकर सडक से जानेवाले व्यक्ति को वह इशारा करता है। इसी समय उसकी बहिन किशोरी आती है।]

किशोरी : *दादा !*

चन्द्रकान्त : (चौककर) *कौन ?*

किशोरी : *कितने जोर से चौके ? किसे इशारा कर रहे थे ?*

चन्द्रकान्त : *चौका ? मै क्यों चौकूँगा ? क्या मैं चोरी कर रहा था या किसी की जेब काट रहा था ?*

किशोरी : *अब क्यों बन रहे हो ? मैने साफ-साफ देख लिया।*

शुः शुः करके ताली बजा रहे थे—और किसे इशारा कर रहे थे, यह भी कहो तो बता दूँ। मैंने उसे सडक से जाते हुये देख लिया था और इसीलिये तो तुम्हें जताने आ रही थी!

चन्द्र : (जरा धीरे-धीरे) कम-से-कम उसका नाम तो मत लो। ठहरना जरा, ऐं! शायद वह ऊपर ही आ रही है। अच्छा तो तुम अब जरा यहाँ से खिसको।

किशोरी : क्यो? क्या तुम समझते हो कि मै कुछ नहीं जानती?

चन्द्र : जानती हो न तुम? फिर क्यों मुझे तङ्ग कर रही हो? अगर आबा (पिता जी) आ गये तो—

किशोरी : आबा के आने से क्या होगा? वह कौन है, इसका आबा को क्या पता?

चन्द्र : आ गई शायद? सच बताओ, आबा उसे जानते तो नहीं है न? लो, वह आ ही गई। मै सोच रहा था कि मेरा इशारा उसने सुना या नही?

चकोरी : (प्रवेश करके) ओ माँ! तुम भी हो यहाँ!

किशोरी : डरो मत। मैं सब कुछ जानती हूँ। सुनो चकोरी? हमारे आबा तुम्हें नहीं पहचानते। तुम्हारा नाम भी वे नही जानते।

चकोरी : पर हमारे दाजी साहब (पिता जी) इन्हें पहचानते है और इनका नाम भी जानते हैं।

चंद्र : यही तो वड़ी मुश्किल आ पडी है! इसीलिये हमें

चोरी चोरी मिलना पड़ता है। जब से दाजी को यह पता चल गया है कि मैं कौन हूँ तब से वे इस पर लगातार कड़ी नजर रखते हैं। आज कैसे छूट आईं उनके चुंगल से ?

किशोरी : देखो दादा, स्त्रियों से ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जाते। कैसे भी छूटकर क्यों न आई हो। आ तो गई। जो बातें करनी हो, कर लो। मैं अब जाती हूँ। शायद आवा आ जाएँ। यदि आते हुए देखूँगी तो तुम्हें इशारा कर दूँगी। अब जाती हूँ, ऐं ? (जाती है।)

चन्द्र : देखा, मेरी बहिन कितनी होशियार है ? किसी को भी मैंने पता नहीं लगने दिया था—लेकिन इसे कहा से पता चल गया भगवान जाने ?

चकोरी : मैंने ही बताया है उसे।

चंद्र : तुमने बताया ? तुम भी खूब हो ! अगर वह किसी दूसरे से कह दे तो हमारी क्या दशा होगी, यह कभी सोचा है तुमने ?

चकोरी : हमारा कुछ नहीं होगा ! और वह किसी से कहेगी भी नहीं। उसे तुम्हारी अपेक्षा मेरी चिन्ता अधिक है। मैंने उससे सब कुछ दिल खोलकर कह दिया है।

चन्द्र : फिर उसने क्या कहा ?

चकोरी : वह कहेगी क्या ? उसे कहने की जरूरत ही क्या है ? बात यह है कि हम तरुणियों को ऐसा ही कुछ अच्छा

लगता है । इस तरह का कोई विरोध हुये बिना खिचाव नही बढता और बिना खिंचाव के प्रेम का मजा क्या ?

चन्द्र : मै तो अब बिल्कुल हार गया हूँ । हम कब तक यूँ लुक-छिपकर मिलते रहेंगे । यह भी क्या अजीब दुश्मनी है । तीन सौ साल की पुरानी दुश्मनी अभी तक पाले हुए है हमारे ये बुजुर्ग !

चकोरी : अब इसका कोई इलाज नहीं । उन्होंने जो एक बार तय कर लिया है, वह बदलेगा नही । हमें ही कोई राह निकालनी होगी ।

चन्द्र : राह कैसे निकालें । राह एक ही है । हम दोनो कहीं भाग चलें ।

चकोरी : ऐसा सुखमय घर-द्वार छोड कर ?

चन्द्र : फिर और क्या उपाय है ? दो में से एक को छोडना ही होगा ।

चकोरी : कुछ भी नहीं छोडना होगा । थोड़ी राह देखनी चाहिए । धीरज रखना चाहिये । भाग जाने से क्या होगा ? हमारी सारी जिन्दगी तो सुख-चैन में गुजरी है । घर-द्वार, नौकर-चाकर, मोटर आदि सभी ऐश्वर्य का उपभोग करते हुये हमने अभी तक जीवन बिताया है । सिर्फ एक ने ही नहीं, बल्कि हम दोनों ने । हम अगर भाग गए तो घर के लोग हमारा फिर कभी मुँह भी न देखेंगे । बडे सङ्गदिल होते हैं ये पुराने लोग । उनसे किसी भी प्रकार के समझौते

की आशा नही करनी चाहिए। हम भागकर क्या करेंगे? अगर कहीं नौकरी करना चाहें तो तुम अभी मैट्रिक भी पास नहीं हो और मुझे तो अंग्रेजी स्कूल की सूरत भी नही दिखाई गई है। मेरा तो काम रहा है खाना-पीना और ऐशो-आराम में पड़े रहना। यही स्थिति तुम्हारी भी है। तो बताओ हम भागकर करेंगे क्या?

चन्द्र : भीख माँगेगे। पर ये कष्ट नही चाहिए।

चकोरी : यह कह देना कि भीख माँगेंगे सरल है। भीख कैसे माँगोगे? आजकल कोई भीख भी तो नहीं देता। और रहेंगे कहाँ? पैर रखने को कही जगह भी तो चाहिये न? तुमने तो कह दिया कि भीख माँगेंगे! पर मील-भर चलने की आदत भी है हमे?

चंद्र : फिर क्या करना चाहिए?

चकोरी : चुप बैठना चाहिए।

चंद्र : कितने दिन?

चकोरी : मौका मिलने तक।

चन्द्र : मौका कब मिलेगा? मौका तभी मिल सकता है कि जब दोनों के बाप मर जाएँ।

चकोरी : ना, जी न—ऐसी अशुभ बातें नही करते।

चंद्र : अब और अशुभ होने को क्या बचा है?

चकोरी : ऐसा कहने से काम नही चलेगा। इसी में से कोई

राह निकालनी होगी अभी पूरी जिन्दगी हमारे सामने पडी है। जीवन मे आगे बहुत-सी कठिनाइयाँ आएँगी उस समय क्या करोगे? क्या सब के मरने की राह ही देखते रहोगे?

चंद्र : फिर मौके की राह कब तक देखें ? क्या बुढ़ापा आने तक?

चकोरी : हाँ-हाँ! बुढापा आने तक। तब तक राह देखने के लिये तुम तैयार हो क्या?

चंद्र : और तुम?

चकोरी : अगर मै तैयार न होती तो तुमसे क्यो पूछती?

चंद्र : और मान लो तुम्हारे पिताजी ने तुम्हारा किसी दूसरे से विवाह निश्चित कर दिया तो?

चकोरी : तो क्या करूँगी, यह मैने पहिले ही अच्छी तरह सोच लिया है।

चंद्र : क्या करोगी?

चकोरी : (चिढकर) जान दे दूँगी।

चंद्र : जूलियट की तरह?

चकोरी हाँ-हाँ! जूलियट की तरह और क्या तुम भी फिर वही करोगे?

चंद्र : यह मैने अभी तक नही सोचा है। मैने तो यही निश्चय किया था कि हम दोनों कहीं भाग चलें। पर तुम्हें यह मंजूर नही। अगर तुम्हारा विवाह किसी दूसरे से निश्चित हो जाए तो तुम क्या करोगी, सच-सच बताओ?

चकोरी : वह मेरा अपना रहस्य है। तुम्हें बताने का नहीं है—
(भीतर से 'यह कौन हैरी' कहते हुए आबा साहब भोसले आते है।)

आबा : यह कौन है जी?

चंद्र : आबा! क्या यह-यह···

आबा : यह-यह क्या करता है! क्या सीधा नहीं बता सकता? कौन है री तू?

चकोरी : क्या मुझ से पूछ रहे है? मै हूँ आपकी एक···

आबा : मेरी? मेरी कौन?

चकोरी : अभी तक आपकी कोई नहीं।

आबा : अभी तक नही का मतलब? क्या आगे चलकर तू कोई होने वाली मेरी?

चकोरी : हाँ। अगर आप स्वीकार कर लें तो—

आबा : स्वीकार कर लूँ तो क्या होने वाली है?

चकोरी : आपकी बहू।

आबा : क्या यह सच है रे चन्दू? कहाँ से पकड़ लाया इसे? और यह छोकरी भी बड़ी वैसी दिखती है। साफ-साफ कहती है कि मेरी बहू बनेगी। हाँ! मेरी बहू! इस आबा साहब भोंसले की बहू! इसका नाम क्या है रे?

चंद्र : चकोरी।

आबा : चकोरी कौन? पूरा नाम बता न?

चंद्र : चकोरी शिर···

आबा : (चिल्लाकर) क्या शिरके ?

चंद्र : जी नहीं, शिरनामे ।

आबा : शिरनामे ? जात क्या है ?

चकोरी : मराठा ।

आबा : मराठा और शिरनामे ? मराठों में शिरनामे कोई कुल नाम नहीं है । शिरनामे तो ब्राह्मणों मे होते है । वर्णसंकर तो नही है कहीं ?

चकोरी : मैं असली मराठा खानदान की हूँ ।

आबा : असली मराठा खानदान की लडकियाँ अपने मा-बाप की आँख बचाकर दूसरों के घर जाकर यूँ प्रेम की बातें नहीं किया करती, समझीं ? हम लोग भोंसले हैं—असल छत्रपति शिवाजी महाराज के कुल के ! —क्यों आई थी यहाँ ?

चकोरी : किशोरी से मिलने ।

आबा : फिर मिल ली उससे ? घर में है वह ? उसे छोड़कर यहाँ इसके पास से पहुँच गई ?

चंद्र : यह बात नहीं, आबा ! बात यह हुई

आबा : तुझसे कौन पूछ रहा है ? तू क्यों बीच में बोलता है ? अपने को मराठा की लडकी बताती है ? मुझे विश्वास नहीं होता—कोई भी ऐरा-गैरा अपने को मराठा कहने लगता है । असली मराठा खानदान की बता रही है अपने को ? असली मराठा खानदान की लड-कियाँ बिना माँ-बाप की अनुमति के अपने घर की देहली नही लाँघती !

चकोरी : उसने अनुमति लेकर ही आई हूँ मै।

आबा : उन्हें क्या बताकर आई है ? क्या यह कहकर आई है कि चन्द्रकान्त भोंसले से मिलने जा रही हूँ।

चकोरी : नहीं—किशोरी से।

आबा : कहाँ है वह किशोरी ? ('किशोरी'—'किशोरी' कहकर पुकारता है ।) अब तेरी परीक्षा ही लेता हूँ। किशोरी !

किशोरी : (प्रवेश करके दूर से ही)—क्या है आबा ? (धीरे से) हाय राम ! धोखा हो गया है।

आबा : इधर आ

किशोरी : (पास जाकर) क्या है आबा ?

आबा : इसका क्या नाम है ?

किशोरी : चकोरी—

आबा : और कुलनाम ?

चकोरी : चकोरी शिरनामे।

आबा : तूने क्यों बताया ? तुझसे किसने पूछा था ? क्यों बोल पडी बीच में ? तू ने इसे आगाह कर दिया। अपना कुलनाम शिरनामे बताती है ! और कहती है कि असली मराठा खानदान की हूँ ! क्यों री किशोरी, कौन है यह ?

किशोरी : मेरी सहेली।

आबा : कहाँ मिली थी यह ? कब से बनी है तेरी सहेली ?

किशोरी : मोहिते के घर। उनकी भाजी है यह।

आबा : कौन मोहिते ?

किशोरी : काका साहब मोहिते जो ठेकेदार है।

आबा : अच्छा तो प्रथम उनके घर भेंट हुई थी इससे ? कब मिली थी ?

किशोरी : यही महीने-डेढ़ महीने पहले।

आबा : अच्छा, यह बात है। महीने-डेढ़ महीने पहिले यह लडकी पहली ही बार तुझे मोहिते के यहाँ मिली थी और तब से तेरी सहेली हो गई। ठीक है न ?

किशोरी : हाँ बाबा। यही बात है।

आबा : यह मुझे बता रही है मोहिते तो यहाँ से अपना डेरा-डंडा उठाकर दिल्ली चले गए।

किशोरी : पर हाल ही में तो गए है।

आबा : नही। उन्हें गए छः महीने से भी अधिक हो गये। हैः ! सच बता यह कौन है ?

किशोरी : सच बताऊँ आबा। इससे मेरी बहुत पुरानी पहचान है। हम दोनो प्राइमरी मे एक साथ पढती थीं। तब से हम दोनों का परिचय है।

आबा : फिर तूने मुझसे झूठ क्यो कहा ?

किशोरी : थोडा मजाक किया आप से।

आबा : मजाक किया ? मुझसे मजाक किया ? इस आबा साहब भोंसले से मजाक किया ? क्यों ?

किशोरी : वैसी कोई बात नहीं है, आबा। आप बिला वजह शक कर रहे थे—यूँ ही खोद-खोदकर पूछ रहे थे। इसलिये दिल में आया कि कह दूँ कुछ भी।

आबा : अच्छा, तो ऐसा मजाक किया था मुझ से ? तू तरुण पीढ़ी की जो है न ? तुम लोगों को बूढ़ों से मजाक करने में गुदगुदी होती है—क्यों, यही न ?

चकोरी : कुछ भी क्यों कह दिया री, किशोरी ? बिल्कुल सच कहती हूँ आबा साहब, हम दोनों बचपन से सहेलियाँ है।

आबा : फिर मैने तुझे अपने घर पहिले कभी क्यों नही देखा ?

चकोरी : देखा तो था। जब मैं बच्ची थी, फ्राक पहिनती थी, तब आपके घर हमेशा आती थी। किशोरी की माँ मुझसे बहुत प्यार करती थी। उस वक्त आप भी तो मेरे गाल में चुटकियाँ लिया करते थे।

आबा : मै गाल में चुटकियाँ लिया करता था ? अरी, अपने बच्चो के गालों को भी मैंने कभी छुआ नहीं—और तू कहती है कि तेरे गालो में मैं चुटकी लेता था ? क्या तू भी मुझसे मजाक कर रही है ? और तू रे गधे ?

चंद्र : जी आबा साहब ?

आबा : गूँगा-सा क्या बैठा है ? कुछ बोल न ?

चंद्र : क्या बोलूँ ? आपने मुझसे कुछ पूछा ही नहीं।

आवा : पूछने की क्या जरूरत है ? वता, क्या ये दोनों सच कह रही हैं ।

चंद्र : यह मैं क्या जानूँ ? मै पुरुष हूँ । मैं स्त्रियों में जाकर नही बैठता । उनसे कोई सरोकार 'नही रखता ।

आवा : फिर अभी यह क्या वातें कर रही थी तुझसे ?

चंद्र : वह पूछ रही थी मुझसे ।

आवा : क्या पूछ रही थी ?

चंद्र : पूछ रही थी कि किशोरी कहाँ है ?

आवा : इतने लगाव से ? तेरे दोनों हाथ । पकडकर ! हाथ से हाथ लगाए बिना शायद पूछते नहीं वनता था ?

चंद्र : क्यों चकोरी, क्या तुमने मेरे हाथ पकडे थे ।

चकोरी : शायद पकडे हों ! मुझे कुछ याद नही ।

आवा : पर मैंने तो देखा था न ! वडी मजवूती से तू उसके हाथ पकडे हुये थी और आँखों में प्राण समेटकर उसके मुँह की ओर देख रही थी ।

चंद्र : आप तो कुछ भी कहे जा रहे हैं ? कम-से-कम मुझे तो याद नहीं आता कि ऐसा कुछ हुआ था ।

चकोरी : शायद हुआ भी हो। हो सकता है ! वचपन से ही हम दोनों की यह आदत है न ? मैं यहाँ आती, तो ये मेरे हाथ पकडकर मुझे गोल-गोल चक्कर में घुमाते थे । यह तो इनकी पुरानी आदत है, आवा साहव । वैसे यह हो सकता है कि मैंने अनजाने विल्कुल अन-

जाने इनका हाथ पकड भी लिया हो। हाँ अब याद आता है—मैने तुम्हारा एक हाथ पकडा था···

आबा : एक हाथ नहीं—तूने इसके दोनो हाथ अच्छी तरह कसकर पकड रखे थे। और आँखें ··

किशोरी : और क्या आँखें भी पकड ली थीं ?

आबा : मजाक बन्द कर किशोरी। तुम लोग मुझे बूढ़ा समझते हो, पर वैसे कोई बिल्कुल ही बूढा नहीं हो गया हूँ मै। मेरी नजर काफी तेज है। सामने वाले पहाड़ के पेड पर बैठा हुआ पक्षी भी मुझे दिख जाता है। ये शिकारी की आँखें है, शिकारी की। इन्ही से मैंने यह सब देखा—

किशोरी : क्या देखा ?

आबा : इस छोकरी ने चन्दू की आँखों में अपनी आँखें डाल दी थीं और चन्दू भी ललचाए मन से इसके मुँह की ओर देख रहा था—

किशोरी : क्या यह पूछते समय कि मैं कहाँ हूँ ?

चकोरी : हाँ-हाँ। ये कुछ गप्पें लगा रहे थे। कभी कहते, किशोरी घर में है। कभी कहते, नहीं है, तब मैंने इनके दोनो हाथ यूँ पकड लिए और इनकी ओर यूँ देखा। अब याद आया और मैने कहा—

आबा : (चिल्लाकर) अरी ओ शरीर लडकी, छोड उसके हाथ। मेरी आँखो के सामने ही पकडती है उसके हाथ ? और तू रे ?

चन्द्र · जी आवा साहब ! मैंने क्या किया ?

आबा · क्या उसी तरह नहीं देखा तूने इसकी तरफ अभी भी ?

किशोरी : यह वह कैसे कह सकता है ? उसके सामने यहाँ कोई आइना थोड़े ही लगा है ?

आबा : आइने की क्या जरूरत ? देखते समय क्या लगता है—क्या यह नही बताया जा सकता ?

चन्द्र : वैसे खास तो कुछ नहीं लगा, आवा साहब !

आबा · और तुझे री ?—क्या नाम बताया अपना ?

किशोरी : चकोरी।

आबा : हॉ-हाँ। चकोरी ! तुझे क्या लगा चकोरी ?

चकोरी : किस वक्त ? क्या अभी जब आपके सामने हाथ पकड़े, या कि आपके आने से पहिले पकड़े हुई थी तब ?

आबा : दोनों वक्त। बिल्कुल दोनों वक्त बता तुझे क्या लगा था ?

चकोरी : मुझे क्या लगा था भला ? कुछ लगा हो—ऐसा कुछ मालूम ही नहीं होता।

आवा : अच्छा, ऐसी बात है ? अच्छा, अच्छा ! तो तू किशोरी से मिलने आई थी, क्यों ?

चकोरी : हाँ।

आबा : फिर वह बहू बनने की बात कैसे आई ?

चकोरी : वह तो मैंने यूँ ही मजाक में कह दिया था।

आबा : याने मुझसे कोई जान-पहचान न होते हुए भी तू मुझसे मजाक कर रही थी ? मेरे मुँह की ओर क्या ताक रही है ?

चकोरी : ऐसे ताकने की मेरी आदत ही है। ऐसे ही इनकी तरफ भी देख रही थी।

आबा : ऐसे ही देख रही थी ? क्यों—सुना किशोरी, यह क्या कह रही है ? कहती है ऐसे ही देख रही थी ! वह उस तरह देख ही नहीं रही थी, समझी ? इसकी ओर जिस तरह देख रही थी, उस तरह मेरी ओर नहीं देखती थी।

किशोरी : याने कैसे ?

आबा : तू चुप बैठ किशोरी ! हाँ, बता न ?

चकोरी : क्या बताऊँ ? आपका प्रश्न ही मै नहीं समझी—

आबा : तेरी यह सहेली बड़ी चालाक जान पड़ती है, किशोरी। और तू रे ?

चन्द्र : जी आबा साहब—

आबा : जी-जी क्या करता है। तब से लगातार मै ही बोल रहा हूँ। और तूने तो मुँह से शब्द न निकालने की जैसे कसम ही खा ली है !

चन्द्र : आप उससे बातें कर रहे है। वह जवाब दे रही है। मैं बीच मे व्यर्थ क्यों बोलूँ ?

किशोरी : हाँ। ठीक तो है। बीच में बोलना आबा साहब से बिल्कुल बर्दाश्त नहीं होता।

आबा : तू चुप रह किशोरी। हाँ, अब बता ?

चकोरी : मै क्या बताऊँ ?

आबा : तुझसे नहीं पूछ रहा हूँ। इससे पूछ रहा हूँ—इस अक्ल के दुश्मन से—अब सच-सच बता—

चन्द्र : क्या मैने कभी झूठ बोला था ?

आबा : सीधी तरह से जवाब दे, समझा ? मेरे सामने ऐसी उड़न-छू बातें नहीं चलेंगी—बता कौन है यह लड़की, यहाँ क्यों आई है ? इससे तेरा क्या सम्बन्ध है ? तेरे दोनों हाथों को कसकर पकड सकती है और तेरी आँखों में आँखें डाल सकती है—ऐसी यह कौन है तेरी ?

चन्द्र : मुझे जो कहना था, कह चुका—किशोरी ने भी कहा—इस लडकी ने भी कहा।

आबा . क्या यह कि मैं बहू बनूँगी ?

चन्द्र : जी नहीं। कहा हि मैं किशोरी की सहेली हूँ—

आबा : सहेली-सहेली कहते-कहते बहिन का हाथ पकड कर भाई के घर में घुस जाती है आजकल की लड़कियाँ।

किशोरी : मान लीजिये कि यही हो गया है, आबा साहब !

आबा : यह कैसे होगा ? हमारे यहाँ की यह रीति नहीं। हमारे पूर्वजों ने ऐसा कभी नहीं किया। हमारी रीति तो यह है कि बाप लड़की को देखे, पसंद करे, तय करे और लडका चुपचाप उस लड़की से विवाह करे। यही हमारे खानदान में होता है। यही हमारे पूर्वजों की रीति है।

चन्द्र : पर पूर्वजो की सभी रीतियों को हम कहाँ पाल रहे हैं ? हमारे पूर्वज बहादुर थे, लडाके थे और आज उन्ही के वशज हम मकान वनाने के ठेके लेकर राज का काम कर रहे हैं ।

आबा : (संतप्त होकर) मुझे राज कहता है रे ? बेटाजी, मै राज बना तभी तो गुलछर्रे उड़ा रहा है तू । निठल्ला बैठा दोनो जून भरपेट भोजन पा रहा है । मजे उडा रहा है और शहर की आवारा लड़कियों के हाथ तुझे मनमाना घूमने को मिल रहा है ।

किशोरी : हें ! हें ! आबा साहब ! मेरी सहेली को आप आवारा न कहिए। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकती । कल मान लीजिये किसी ने—किसी ने क्यों, शिर्के ने ही मुझे आवारा कह दिया तो—

आबा : उनकी क्या मजाल जो तुझे आवारा कहें । मुँह तोड-कर दाँत झडा दूँगा एक-एक के । शिर्के का तो नाम मत लेना इस घर में ! तीन सौ साल से दुश्मनी चली आ रही है शिर्के और भोसले मे !

चन्द्र : तीन सौ वर्ष पहिले संभाजी ने शिर्को का सत्यानाश किया था । उसके बाद पीढ़ियाँ बीत गई, पर इस बीच किसी भी भोसले ने किसी भी शिर्के का कुछ भी नहीं बिगाडा और न किसी शिर्के ने किसी भोंसले पर आग बरसाई । फिर यह पुराने जमाने की दुश्मनी आज भी क्यों चलती रहे ?

आबा : यह तू नही समझेगा । जो है, वह ऐसा है । यह खानदानी रीति है । पूर्वजो से चली आ रही है । यह-

यह इसी तरह चलती रहेगी। इसे तू नहीं समझ सकता।

किशोरी : *पर आबा साहब, अब भोसलों का भी राज्य गया। राज्य तो सारे ही चले गये! शिर्कों के पास तो कोई राज्य ही न था—सभी फकीर हो गये हैं! तलवार को भी नहीं पहचानते। अगर सम्पत्ति बनी है तो उसका कारण यह है कि कुछ भी ऊँट-पटाग धन्धा कर रहे है। ऐसी स्थिति में यह पुराना बैर व्यर्थ क्यों चालू रखा जाए?*

आबा : *अब तू भी कहने लगी ऐसा? तूने भी खोज लिया है क्या कोई शिर्का?*

किशोरी · *'भी' का क्या मतलब, आबा साहब?*

आबा : *मतलब यह कि मुझे यह लडकी शिर्के की मालूम होती है। चन्दू ने 'शिर' कहा और वह रुक गया और फिर इस लडकी ने 'शिरनामे' कहकर उसे सँभाल लिया। तभी मुझे शक हुआ। बता री—कौन है तू? शिर्के या शिरनामे?*

चकोरी : *मैं चकोरी हूँ—चकोरी शिरनामे।*

आबा . *शिरनामे तो ब्राह्मण होते हैं।*

चकोरी : *तो क्या ब्राह्मणों और मराठों के कुलनाम एक से नहीं होते?—भोंसले भी ब्राह्मण हैं—*

आबा : *वे भोंसले नहीं—भोंसुले है—*

चकोरी . *'स' क्या और 'सु' क्या—कुल मिलाकर एक ही हैं! बोलते समय लोग उन्हें भोसले ही कहते हैं।*

आबा : अच्छा, अच्छा। समझ गया। व्यर्थ अकल न बघार मेरे सामने। सीधी तरह से बता—(बाहर कोई दरवाजा खट खटाता है)।

किशोरी : शायद कोई आया है बाहर ?

आबा : आने दे। मुझे चकमा देना चाहती है—मैं तुम लोगों के झासे में नहीं आऊँगा।

किशोरी : इसमें झाँसे की क्या बात है ? कम-से-कम देख तो लूँ कौन आया है ?

(कहते-कहते जाती है।)

आबा : देखो, तुम लोग सच-सच नहीं बता रहे हो। पर अब मैं तुम्हें छोड़ूँगा नहीं। मुझे पक्का विश्वास हो गया है कि—

(डा० को साथ लिये किशोरी आती है)।

डाक्टर : (आते-आते) ओहो, आबा साहब, यहीं हैं क्या आप ?

आबा : अब ये आये ? हाँ, यहीं हूँ मैं डाक्टर। आप जरा भीतर बैठिए। मैं थोड़ी देर में आता हूँ।

डाक्टर : ना-ना ! मुझे बिल्कुल वक्त नहीं। आप जल्दी अपने कमरे में चलिए। झटपट जाँच करके आपको छोड देता हूँ।

आबा : तो चलिये फिर—और तू री—और तू रे—

डाक्टर : अजी, चलिये भी जल्दी।

आबा : हाँ, तो चलिए। आ रहा हूँ। (दोनो जाते हैं)।

(चन्द्रकान्त और किशोरी शर्माते और खिलखिलाकर हँसते हैं) ।

किशोरी : *कितने अच्छे है हमारे डाक्टर, क्यों ? कैसे ठीक मौके पर ही आ पहुँचे !*

चकोरी : *अच्छा हुआ मैं जरा आड में थी, यही महाशय हमारे भी डाक्टर हैं । अगर मुझे देख पाते—*

चन्द्र : *अरे बाप रे ! तब तो मुश्किल ही थी—*

चकोरी : *कौन बीमार है ?*

किशोरी : *कोई नहीं । हमारे आबा साहब का एक 'फंड' है । वे डाक्टर से हफ्ते में एक बार अपनी जाँच कराते हैं ।*

चकोरी : *अच्छा, तो अब मैं जाती हूँ । डाक्टर अभी आएँगे और उन्होंने मुझे कहीं यहाँ देख लिया तो बड़ा घुटाला होगा ।*

चन्द्र : *तो फिर तुम चली ही जाओ ।*

चकोरी : *नहीं । मेरे मन में एक विचार उठा है ।*

किशोरी : *कौन सा विचार ?*

चकोरी : *डाक्टर को इस जाँच में कितनी देर लगती है ?*

किशोरी : *वैसे कोई खास देर नही लगती । पर कभी-कभी वे आबा साहब के साथ गप्पें हाँकने बैठ जाते है ।*

चन्द्र : *पर आज वे नहीं बैठेंगे । अभी कहते थे न कि उन्हें वक्त नहीं है । शायद कहीं जल्दी जाना होगा उन्हें ।*

चकोरी : तो अब मुझे जाना ही चाहिए । मै उनसे रास्ते में ही मिलना चाहती हूँ । और, तुम एक काम करना—

किशोरी : क्या करूँ ?

चकोरी . तू नहो । मैं इनसे कह रही हूँ—तुम आज शाम को शहर के वाहर वाले बाग में, बरगद के पास मुझसे जरूर मिलना । मेरे मन मे एक वड़ा अच्छा विचार आया है ।

चन्द्र : कौन-सा विचार आया है तुम्हारे मन में ?

चकोरी : अगर अभी बताने लगूँ और डाक्टर तुरन्त आ धमके तो ? इसलिये मुझे अब जाना ही चाहिये । जाती हूँ । (जाते-जाते) आज शाम को बगीचे मे—बरगद के पास—भूलना नही, समझे ? (जाती है) ।

किशोरी : कौन-सा विचार आया होगा इसके दिमाग में ?

चन्द्र . यूँ वह बडी होशियार है । इसीलिये तो मुझे अच्छी लगती है वह । लगता है उसे कोई वढ़िया उपाय सूझा है ।

किशोरी . क्या तुम्हारी इस समस्या को हल करने का ?

चन्द्र : हाँ ।

किशोरी : पागल हो, तुम दादा । यह तुम्हारा केवल भ्रम है । इस समस्या का हल होना असंभव है । शिर्के का नाम सुनते ही आबा साहब का सिर किस तरह एकदम

घूम जाता है, यह तुम अभी देख ही चुके हो। मै कहती हूँ दादा, तुम चकोरी का पीछा छोड दो। रोमियो और जूलियट का किस्सा तो तुमने पढा होगा। एक दिन तुमने वह फिल्म भी तो देखी थी न ?

चन्द्र : मैने किसी किताब मे तो वह कहानी नहीं पढी। पर उसकी फिल्म जरूर देखी थी। अंग्रेजी में भी और हिन्दी मे भी। यह भी मेरे साथ गई थी उस दिन। मै जानबूझ कर ले गया था उसे वह फिल्म दिखाने।

किशोरी : हाँ—देखी थी न ? तो फिर कुछ सबक सीखा उससे ?

चन्द्र : हाँ। सीखा। चकोरी ने कहा कि जूलियट मूर्ख थी और रोमियो उससे भी अधिक मूर्ख था—

किशोरी : और यही एक बडी सयानी है। देखती हूँ कि अब अपनी अक्ल का क्या कमाल दिखाती है ? मैं फिर तुमसे यही कहती हूँ कि चकोरी का पीछा छोडो। आबा साहब जितने जिद्दी है उतने ही शिर्के भी महा जिद्दी हैं। दोनों में से एक भी किसी की नहीं मानेंगे। अपने मन को व्यर्थ क्यों कष्ट दे रहे हो ? इस जैसी हजार लडकियाँ दौडती आएँगी तुम्हारे पास ?

चन्द्र : इस जैसी ? विधाता इतना मूर्ख नहीं है किशोरी ! इसके सरीखी यही है और मेरे सरीखा मैं ही हूँ। तुम्हें अभी तक पता नहीं चला है इस मर्म का। तुम्हें

भी ऐसा कोई मिलता—यदि कोई मिलता भी तो क्या उपयोग—शिर्के का कोई लडका होता—
(आबा साहब और डाक्टर बातचीत करते हुये आते है)।

डाक्टर : जरा सावधान रहिए आबा साहब। छाती सेंकते रहिए। सेंकने से पहिले थोडा तेल मलवा लिया करें छाती पर। कितनी बार आपसे कहा, पर आप कुछ ख्याल ही नही करते। यह खानदानी मर्ज मालूम होता है। आपके पिता जी हृदय की गति रुक जाने से ही स्वर्गवासी हुए थे, यह तो आपको याद है न? आप अपने मन को जरा भी कष्ट न दिया करें—क्यो रे चन्द्र, लगता है तुम दोनों में कुछ झगड़ा हो रहा था। शायद तेरे मुँह से कोई ऐसी बात निकल गई थी जिसने आबा साहब के मस्तक को भड़का दिया था।

चन्द्र : नही तो, डाक्टर—

डाक्टर : नहीं कैसे? मै डाक्टर हूँ या धोबी? जाँच में मुझे सब पता चल गया। समझा? ऐसी कोई बात न कहा कर जिससे आबा साहब के दिल को धक्का लगे। एक दिन मुझे तेरी छाती भी जाँचनी होगी। अच्छा, आबा साहब, अब जाता हूँ। नमस्ते। क्यों किशोरी, तेरा ठीक चल रहा है न? (बोलते-बोलते जाते है)।

आबा : वह छोकरी चली गई शायद? या कि तूने ही भगा

दिया उसे ? मैं अच्छी तरह से ठोंक-बजाकर पूछने वाला था उससे। मुझे धोखा देता है, क्यों ?

किशोरी : डाक्टर ने क्या कहा था अभी। चलिए अब भीतर। थोडा तेल मलकर छाती सेंके देती हूँ—

आबा : इसमें शक नहीं। शिर्के की ही लडकी थी वह। अच्छी छाती सेंकी मेरी उसने। अब तू और क्या सेकेगी ? तू भी उन्हीं में से है। तुम सब ने मुझे नीचा दिखाने के लिए कोई षड्यन्त्र रचा है। पर याद रखना—मैं भोंसले का बच्चा हूँ !···

किशोरी : अब बहुत हो गया। चलिए भीतर––

आबा : फिर से आने दो यहाँ उसे। शिर्के का बच्चा मेरे घर में ! तीन सौ बरसों से भोंसलों ने शिर्कों के घर की सीढ़ी पर कदम नहीं रखा और शिर्को ने भी भोंसले घर की कभी देहली नहीं लाँघी—

(इस तरह बकते है तभी किशोरी कहती है—'चलिये अब। बहुत हो गया' और जबरदस्ती खीचकर उन्हें भीतर ले जाती है। चन्द्रकान्त किसी गीत का एक चरण गुनगुनाता रहता है)।

दूसरा दृश्य

(चकोरी मन-ही-मन एक गीत गुनगुनाती है। इसी समय उसे दूर से पुकारते हुए उसके पिता दाजी साहब शिरके प्रवेश करते है)

दाजी : चकोरी-चकोरी—तू यहाँ है क्या ? कहाँ गई थी ?

चकोरी : जाऊँगी कहाँ ? यहीं तो बैठी हूँ तब से। दूसरा काम

ही क्या है मुझे ? सिर्फ बैठे रहना ! ना स्कूल, ना कालेज ! मेरे साथ की लडकियाँ बी० ए० हो गई है। जब मुझसे मिलती हैं, तो मै शर्म से गड़ जाती हूँ। फिर क्या जरूरत है कही जाने की ?

दाजी : मैने सिर्फ तुझे पुकारा था, तो तूने मुझे इतनी लम्बी-चौडी बातें सुना दीं। स्कूल और कालेज में नही गई तब तो इतना मुँह चलाती है। जाने पर न जाने क्या करती ? फिर भी गनीमत है कि पुराने जमाने का परदा अब नही है—

चकोरी : अब और अलग परदे की क्या जरूरत ? हमेशा घर के भीतर ही तो बन्द रहती हूँ। मैं तो बिल्कुल ऊब उठी हूँ इस जिदगी मे !

दाजी : अच्छा, अच्छा ! अब नहीं ऊबेगी। मैं कुछ ऐसा इंतजाम कर रहा हूँ कि अब तुझे ऊबने का मौका ही न आएगा। एक काम कर। भीतर जा। मुँह-हाथ अच्छी तरह धोकर पोछ ले। ठीक से कघी-चोटी कर ले। अपनी वह चौडी किनारीवाली 'इरकली' साडी पहिन ले और घुटनो तक घूँघट काढ़कर अपने सारे गहने पहिन ले। जा, और इस तरह जल्दी तैयार हो जा। और, जब मै पुकारूँ तब आ जाना।

चकोरी : किस लिए ?

दाजी : देख, लडकियों का काम है जो उनसे कहा जाए उसे वे चुपचाप सुनें।

चकोरी : वह इरकली साडी मुझसे नही सम्हलती और न वे

चार सेर वजन के गहने। क्या मैंने उन्हें पहिले कभी पहना था?

दाजी : पहिले कभी पहने नहीं थे इसीलिए कहता हूँ कि एक बार पहन कर देख ले। बड़े शीशे में अपने आपको इस तरह सिर से पैर तक सजी हुई देखकर मुझे बता कि कैसी लगती है।

चकोरी : बताऊँ क्या? उस स्वाँग की कल्पना मात्र से ही मुझे हँसी आ जाती है। क्या आपको ऐसी सजी हुई लड़कियाँ दिखती है कहीं आजकल? क्यों सजा रहे है मुझे?

दाजी : आज तुझे देखने आ रहे है।

चकोरी : कौन?

दाजी : वे एक राजा है।

चकोरी : राजा तो समाप्त हो गए है अब। रियासतें गई और राजा भी गए।

दाजी : तू ठीक कहती है। पर उनका रुतबा तो अब तक कायम है।

चकोरी : कहाँ के राजा हैं ये?

दाजी : भिकनपुर के।

चकोरी : वही तो नही जो पिछले साल आपसे एक लाख रुपये का कर्ज ले गए थे? क्या वही मुझे देखने आ रहे है?

दाजी : देखो बेटी, विपत्ति किस पर नहीं आती? भगवान ने

हमें दिया है। इसीलिए माँगनेवाले हमारे द्वार पर चले आते हैं--

चकोरी : ठीक है। आपने उन्हें कर्ज दिया इससे मुझे कोई शिकायत नहीं। पर अब आप उसे अपनी बेटी भी दे रहे हैं क्या?

दाजी : तू भी खूब है री? अब तुझसे क्या कहा जाए? अरी, राजा के लिए आदर-सूचक 'उन्हें' कहना चाहिए और तू 'उन्हें' न कहकर 'उसे कहती है।

चकोरी : वह हमारा कर्जदार है न?

दाजी : पर वे एक राजा है।

चकोरी : वह राजा था किसी वक्त, अब रंक हो गया। इसीलिए तो आया था न हमारे द्वार पर? आप क्या ऐसे बेकार बुढ्ढू को मेरे गले बाँध रहे हैं? उसके घर जाने पर भी मेरा सारा खर्च आप ही को उठाना होगा। इससे तो जहाँ हूँ वहीं क्या बुरी हूँ?

दाजी : तेरा विवाह तो करना ही होगा। तेरी माँ होती तो इससे पहिले ही तेरे हाथ पीले हो जाते।

चकोरी : उस समय क्या होता, यह सोचना अब व्यर्थ है। माँ होती तो मैं कालेज ही जाती। वह मुझे घर में यूँ बेकार कभी न बिठला रखती। और अगर विवाह ही करती, तो मेरे लिए कोई डिप्टी कलक्टर या जज ही खोजती। ऐसा बेकार बिगड़ा रईस उसे पसंद न आता।

दाजी : पर वे राजा तो अब आएँगे।

चकोरी : तो उन्हें चाय पिला दीजिए और यह भी पूछ लीजिए कि जो कर्ज लिया है उसे वे किस तरह अदा करेंगे ?

दाजी : अब उनसे कर्ज क्या अदा होगा ?

चकोरी : तो भी आप मुझे उसके घर भेज रहे हैं ? मै साफ कहे देती हूँ—

दाजी : (चिढकर) चुप रह । अब बहुत हो गया । लडकियों को सयानों की बात माननी चाहिए ।

चकोरी : पर अब मै बच्ची नहीं हूँ । मैं अपना भला-बुरा अच्छी तरह समझ सकती हूँ ।

दाजी : पर मैं तो उनसे कह चुका हूँ न ?

चकोरी : तो मै कह दूँगी उससे ।

दाजी : क्या कहेगी ?

चकोरी : जो कहूँगी वह आप सुन ही लेंगे ।

दाजी : क्या इतने बडे आदमी के सामने मेरी बेइज्जती करेगी ?

चकोरी : वह कहाँ का बडा है । अगर उसके यहाँ कुर्की ले जाएँ तो मिट्टी के ठीकरे भी न निकलेंगे घर में ।

दाजी : अब तू बडी मुँहफट हो चली है, समझी ? यह ठीक नहीं । बिना माँ की थी इसलिए मैंने तेरे खूब लाड सहे । उसका क्या इस तरह बदला दे रही है ? मै कुछ नहीं सुनना चाहता—जा और शृंगार करके जल्दी तैयार हो ।

चकोरी : मैं नहीं जाऊँगी । उस राजा के घर में भी मैं आखिर

इसी रूप में ही तो रहूँगी। उससे कह दीजिए कि वह मुझे इसी रूप में देख ले। और मेरे मुँह से चार तीखी बातें भी सुन ले।

दाजी : अब इस लडकी से क्या कहा जाए ?

चकोरी : कुछ भी न कहिए। मेरे लिए यदि वर ढूँढ़ना चाहते है तो ऐसा ढूँढ़िए जो मेरे समान हो—मेरे बराबर ही पढ़ा-लिखा हो—मेरे सामने अपनी शिक्षा की शेखी बघारने का मौका उसे न मिले। हमारे बराबर ही धनी हो वह। बाप के घर ऐश्वर्य भोगकर पति के घर मायके की शान दिखाना मुझे पसंद नहीं। दिखने में भी वह मेरे जैसा सुन्दर होना चाहिए और उसका घर इसी शहर मे होना चाहिए जिससे मै जब चाहूँ अपने घर आ-जा सकूँ।

दाजी : लगता है अपने लिए तूने ऐसा कोई खोज लिया है शायद ?

चकोरी : हाँ।

दाजी : कौन है वह ?

चकोरी : है एक। मेरी सारी शर्तें पूरी करता है वह।

दाजी : ऐसा कौन है वह कन्हैया ?

चकोरी : वह देखिए—वह देखिए। वह आ रहा है।

दाजी : कहाँ ?

चकोरी : देखिए, वह द्वार पर खडा है। आजाओ न भीतर ?

दाजी : यह ? (जोर से चिल्ला कर) यह ? यह भोसले का बेटा ?

चकोरी : पर है न ठीक वैसा ही जैसा मै चाहती हूँ ।

दाजी : पर भोसले का बेटा ?

चकोरी : कर्जदार नही है । आपके घर कर्ज लेने नहीं आएगा कभी ।

दाजी : (दाँत-ओठ चबाकर) पर भोसले का बेटा—

चकोरी : असली मराठा खानदान का ।

दाजी . फिर भी है तो भोंसले का बेटा—

चकोरी : कुलदीपक है । छत्रपति शिवाजी महाराज के वंश का कुलदीपक ! चालीस लाख का मालिक । आपसे भी अधिक धनी । और उसके चेहरे की ओर तो तनिक देखिए । अगर सिनेमा मे जाए तो पचास हजार रुपया माहवार कमाए । ऐसा सर्वाङ्ग सुन्दर जमाई पाने के लिए सात जन्मों के पुरायो का फल चाहिए ।

दाजी : (मन-ही-मन पुटपुटाते हुए और दाँत-ओठ चबाकर) भोसले का बेटा ? मेरे घर में आया ? मेरे घर में ? इस शिरके के घर मं ?

चकोरी : शिरके के घर में एक गुणवती लडकी जन्मी । इसलिए भोंसले की चरण-रज से शिर्के का घर पावन हो गया !

दाजी : चकोरी, मुँह सम्हाल कर बोल । यह शिरके का घर हैं । सभाजी ने जिस शिरके का सत्यानाश कर दिया था उस शिरके का घर है यह । असल शिरके खानदान का हूँ मै ।

चकोरी : (चन्द्र से) वही क्यो रुक गये। भीतर आओ न ?

दाजी : भीतर ? इस घर में ? शिरके के घर में ? जिस घर की सीढ़ी पर कभी कदम न रखने की प्रत्येक भोंसला शेखी मारता है उसी शिरके के घर में ? कैसे आया तू इस घर में ?

चन्द्र : जैसे सब आते है।

दाजी : भोंसले को छोड कर जिस तरह और सब आते है—क्या उस तरह ?

चन्द्र : हाँ। उसी तरह।

दाजी : शर्म नही आई ?

चन्द्र : शर्म किस बात की ? मैने आपका कोई अपराध नही किया।

दाजी : पर तेरे बाप-दादाओं ने तो किया ?

चन्द्र : मैं थोडे ही बाप-दादा हूँ। किसी जमाने में मेरे बाप-दादाओ क राज्य था। वह राज्य भी अब चला गया। दुश्मनी इसलिए थी कि उनके पास राज्य था। जब वह राज्य ही जाता रहा तो दुश्मनी क्यो रहे ? हम भी कहाँ थे राजा ? यह बात जरूर है कि अपने पुरुषार्थ से आज हम राजा से भी बडे बने बैठे है ? आज प्रजातंत्र है। सब एक स्तर पर है। मै भी इस देश का राष्ट्रपति हो सकता हूँ। सारी प्रजा को आज समान अधिकार प्राप्त है।

दाजी : बडा वाचाल दीखता है !

चन्द्र : केवल दिखता ही नही। हूँ भी वैसा। कुछ दिन

पहिले नगर-पालिका की चुनाव-सभाओ मे मैंने जो भाषण दिए थे, वे शायद आपने सुने नही ? तालियों का तॉता लग जाता था। आसमान गूँज उठता था। सभी सभाओ मे मैने पूरी धाक जमा दी थी। लोग मुझे सिर पर उठाकर ले जाते थे। कल इस राज्य का मंत्री भी हो सकता हूँ—

दाजी : अजी वाह ! जरा सूरत तो देख लो मत्री होने वाले की।

चन्द्र : देख लीजिए। खूब ध्यान से देख लीजिए। उस दिन इटली का एक चित्रकार आया था। भगवान श्रीकृष्ण का पोज देने के लिए मुझे बुला रहा था—

दाजी . चडूखाने की ठोक रहा है बेटा !

चकोरी . यह चंडूखाने की नहीं। बिल्कुल सत्य है। मेरे सामने उसने इनसे पूछा था।

दाजी : तेरे सामने ? तू कब गई थी इसके घर ?

चकोरी : जब भी बाहर जाती हूँ, इन्ही के साथ तो जाती हूँ।

दाजी : मेरे अनजाने ?

चकोरी : यहाँ जाने और अनजाने का कोई सवाल ही नहीं। दिल में आया कि जाऊँ और बस, इनके साथ चल देती हूँ।

दाजी : मेरे सामने यह सब साफ-साफ कह रही है !

चकोरी : तो क्या झूठ बोलूँ ?

दाजी : (चन्द्र से) और क्यों रे क्या यह सब तेरा बाप जानता है ?

चन्द्र : इसका बाप भी कहाँ जानता है कि यह हमेशा मेरे साथ रहती है ?

दाजी : याने तुम दोनों अपने-अपने बाप को धोखा दे रहे हो ?

चन्द्र इसमें धोखे की क्या बात है ? वे मना करते और हम उसे न मानते, तो वह धोखा होता। यहाँ वैसी कोई बात है ही नही।

दाजी : तो अब मै कहता हूँ—

चकोरी : क्या कहते है ? क्या यह कि मैं इनके साथ न जाऊँ ?

दाजी : हाँ-हाँ। यही।

चकोरी : पर अब तो मै इनके साथ हमेशा के लिए जा रही हूँ।

दाजी : मतलब ?

चकोरी : मै इनके साथ विवाह करूँगी।

दाजी : शिरके की लडकी को वह भोंसला स्वीकार करेगा ?

चकोरी : वह अब देख ही लें आप।

दाजी : क्या देख लूँगा ? प्राण चले जाएँ पर वह तुझे कभी स्वीकार नहीं करेगा।

चकोरी : देख लेना।

दाजी : और, चाहे जान चली जाए, पर मै भी अपनी बेटी का विवाह भोसले के बेटे से नही करूँगा।

चकोरी : आपको किसी का विवाह करने की क्या जरूरत ? विवाह तो मै ही करूँगी इनसे !

चन्द्र : हाँ। हमी लोग अपना विवाह कर लेने वाले है। रजिस्ट्रार साहब हम दोनो का विवाह कर देने के लिए तैयार है।

दाजी विना किसी धूमधाम के ही क्या विवाह हो जाएगा ?

चकोरी : धूमधाम से होने वाला भी विवाह होता है और रजिस्ट्रार के सामने होने वाला विवाह भी विवाह ही है। विवाह होना चाहिए, बस ! फिर वह किसी भी पद्धति से हो।

दाजी : और अगर इसका बाप तुझे अपने घर में न घुसने दे तो ?

चकोरी : तो फिर चले जाएँगे कहीं भी।

दाजी : 'कहीं भी' याने कहाँ ? और कही भी जाकर खाओगे क्या ?

चकोरी : हम भूखों नही मरेंगे।

दाजी : कौन नौकरी देगा इसे ? यह मैट्रिक भी तो नहीं है।

चकोरी : चाहे मैट्रिक हो, चाहे बी० ए०। नौकरी मिलेगी सौ-डेढ सो रुपये की। पर इन्हें नौकरी मिल रही है एक लाख रुपये साल की।

दाजी : एक लाख रुपये साल की ?

चकोरी : हाँ। और मुझे भी अलग मिल रही है।

दाजी . तुझे भी एक लाख रुपये की ?

चकोरी : *लाख की नहीं। मुझे दो लाख की।*

दाजी : *वह कौन कुबेर का बेटा है जो तुम्हें यह नौकरी देने वाला है ? कहाँ मिल रही है यह नौकरी ?*

चकोरी : *सिनेमा में। समझे ? सिनेमा मे !*

दाजी : (चिल्लाकर) *सिनेमा में ?*

चकोरी : *हाँ-हाँ। सिनेमा मे। देखिए न हम लोगों की तरफ— यह तो प्रारम्भ का वेतन है। आगे चलकर तो इतना रुपया मिलेगा कि भोसले और शिरके दोनो की सारी जायदाद खरीद लेंगे हम।*

दाजी : *सिनेमा में जाएगी ? शर्म नहीं आती। क्या स्याही पोतेगी हमारे नाम पर ?*

चकोरी : *स्याही कैसी ? बिजली की रोशनी में जगमगाएँगे शिरके और भोसले के नाम।*

दाजी : *वाह ! क्या कहने ? खूब दीये जलाओगी ? सिनेमा में जाएँगे ? अरे, कुल की लाज का भी कुछ ध्यान है तुम्हें ?*

चकोरी : *कुल की लाज आप देखें। हम सिर्फ अपने आप तक ही देखते हैं। यदि कुल का इतना अभिमान है आपको, तो चुपचाप हम दोनो का विवाह कर दीजिए।*

दाजी : *क्या तू मुझे इस तरह दबाना चाहती है ? जा सिनेमा मे—मेरी बला से, मै समझूँगा मेरी लडकी मर गई। खुशी से जा—चाहे जो कर।*

चकोरी : (चन्द्र से) चलिए चन्द्र जी, हमें इनकी इजाजत मिल गई। चलिए अब। (उठकर चलने लगती है)।

दाजी : कहाँ चली ?

चकोरी : इनके साथ।

दाजी . इस भोसले के साथ ?

चकोरी : हाँ।

दाजी : कहाँ जाएगी ?

चन्द्र : यहाँ से हम जाएँगे आबा साहब के यहाँ। वे भी आपकी तरह नाराज होंगे और हमसे कह देंगे कि जाओ। फिर हम घर से निकल पड़ेंगे। विवाह करेंगे और सीधे सिनेमा में चल देंगे।

दाजी : सिनेमा ! सिनेमा !! सिनेमा !!! हरामजादा, मेरी बेटी को सिनेमा मे ले जाएगा ?—मेरी बेटी को ? इस दाजी साहब शिरके की बेटी को ? सिनेमा में ? क्या समझा है तूने ? क्या हिम्मत है तेरी इसे ले जाने की ?

चन्द्र : मै कहाँ ले जाता हूँ इसे ? वही जा रही है मेरे साथ।

दाजी : देखता हूँ वह कैसे जाती है तेरे साथ ?

चकोरी : चलो जी हम चलें। ये देखना चाहते हैं कि हम कैसे जाते है ! अच्छा दाजी साहब ! हम जा रहे है।

दाजी : तू कहाँ जाती है ?

चकोरी : अभी बताया न।

दाजी : खबरदार ! एक कदम आगे बढ़ाया तो । ओ भोसले के बच्चे, तू भी चला जा यहाँ से । एक ओर तो ऐसी शेखी बघारना कि शिरके की घर की सीढ़ी नही चढ ेंगे और—

चन्द्र : मैने ऐसा कभी नहीं कहा ।

दाजी . तूने न कहा हो । पर तेरा बाप जो कहता है न ? तेरा बाप—तेरे बाप का बाप—तेरे बाप के बाप का बाप—और उन सब के बाप यही कहते आए है—

चन्द्र : पर मैं कहता हूँ ऐसा ? नई गेंद और नया खेल शुरू हुआ है अब । नया राज्य आया है । वे पुराने राजा गए और उन्ही के साथ वे पुरानी प्रतिज्ञाएँ भी गईं ।

दाजी : तू भी जा उन्हीं के साथ । नहीं गया अभी तक ? कहता हूँ कि जा-जा-जा !

चन्द्र : मै नही जाऊँगा !

दाजी : नही जाएगा ?

चन्द्र : चकोरी ने मुझे बुलाया—मै आया—जब तक वह जाने को नही कहेगी, तब तक मै नहीं जाऊँगा ?

दाजी : वह कौन है ? इस घर का मालिक मै हूँ । मै कहता हूँ तुझसे सीधी तरह से जाता है या नहीं ? वर्ना—

चन्द्र : वरना क्या करेंगे आप ?

दाजी : यूँ कन्धा पकडकर तुझे—अरे-अरे-अरे !

(चन्द्रकान्त नीचे गिर पड़ता है) ।

चकोरी : हे भगवान, यह क्या हुआ ? क्या हुआ ? पिता जी देखिये तो इन्हे क्या हो गया ?

दाजी : (घबड़ाकर) क्या हुआ ? मैने तो सिर्फ हाथ ही लगाया था ! धकेला भी नहीं—और एकाएक यह क्या हो गया इसे ?

चकोरी : (आजजी से) आसार कुछ ठीक नही दिख रहे हैं। फौरन डाक्टर को बुलाइए। फोन कीजिए उन्हें। ये शायद बेहोश हो गये है। हाय राम ! यह क्या हो गया ? एकाएक यह क्या हुआ ? (नब्ज पर हाथ रखती है) नब्ज का भी पता नहीं।—आँखें फाडकर क्या देख रहे हो ? जल्दी जाकर डाक्टर को फोन कीजिए न ? जाइए-जाइए।

दाजी : (जाते-जाते) डाक्टर घर में हों तब तो ठीक है वर्ना —हे भगवान यह कहाँ की आफत आ गई ? (जाता है।)

चन्द्र . (धीरे-से) क्या वे चले गये ? नाटक बिल्कुल ठीक हुआ न ?

चकोरी · जब वे आएँ तो साँस बिल्कुल रोके रहना। जरा भी हलचल न करना। बिल्कुल अकड जाना। (जोर से) और दाजी साहब, इनके आबा साहब को भी फोन कर दीजिए।

दाजी : (भीतर से) क्या भोसले को ? प्राण चले जाएँ फिर भी नहीं।

चकोरी : तो कम से कम उनकी लडकी को ही फोन कर

दीजिए । अब इनकी कोई आशा नही दीखती। व्यर्थ ही एक कलंक लग जाएगा हम लोगों पर। किशोरी को फोन कर दीजिये। (धीरे से) अब बिल्कुल अचल पडे रहिए—बिल्कुल चुप—(जोर से) उसे फोन कर दिया ?

दाजी : हाँ-हाँ। करता हूँ। डाक्टर आ रहे हैं ?

चकोरी : हाय भगवान ! अब करूँ भी क्या ? मेरा कलेजा धडक रहा है। (चिल्लाकर) दाजी, पहिले इधर आइये—देखिये तो ये कैसा कर रहे हैं—ओ आ ! अब क्या करूँ ? मै तो पागल हो जाऊँगी। (चिल्लाकर) पहिले जल्दी यहाँ आइये न, दाजी।

दाजी : (भीतर आते हुये) वह भी आ रही है।

चकोरी : आ रही है न ? उसके आते तक तो कम-से-कम ये अच्छे रहे । वह सब अपने पिता से कहेगी ही।

दाजी : तूने इसे यहाँ क्यों बुलाया था ? यदि कुछ भला-बुरा हो जाये, तो हम पर व्यर्थ ही एक झूठा कलक लग जाएगा !

चकोरी : हाय ! हाय ! अब क्या करूँ ? कम-से-कम उधर से थोडा कोल्ड-वाटर ही ले आइये—झूठा कलक कैसा ? आपने इनका गला पकड़ लिया था—एक तो पहिले से ही ये सुकुमार हैं—

दाजी : मै सिर्फ उसका कन्धा पकड रहा था और तू कहती है कि मैने उसका गला पकडा। हाँ, ले, यह रहा कोल्ड-वाटर।

चकोरी : हाथ-पैर तो देखिये—कैसे मुर्दे की तरह हो गये है—और नब्ज का भी कहीं पता नही लग रहा है। (चीखकर) आपने प्राण ले लिये इनके ! सात पीढियों की दुश्मनी निकाली आपने !...

दाजी : तू ऐसा कहती है ! कितना घबडा गया हूँ मैं ? क्या नब्ज का कहीं पता नही लगता ?

चकोरी : आप भी जरा नब्ज देख लीजिये न ?

दाजी : ना-ना ! मेरी हिम्मत नही होती। कहाँ की यह एक बला आ गई है भगवान ! डाक्टर क्यों नही आ रहे हैं अभी तक ? चार कदम पर तो घर है, और आने में इतनी देरी लगा दी ? क्या हो गया है इस डाक्टर को ?

डाक्टर : (भीतर प्रवेश करते हुये) कुछ नहीं हुआ है डाक्टर को। क्या हुआ ? अरे, यह तो आबा साहब भोसले का चन्द्रकान्त है। आपके घर कैसे !

दाजी : कैसे आया, यह बाद में बताऊँगा। पहिले उसे देखिये—उसका मुआइना कीजिये।

डाक्टर : पहिले मुझे यह बताइये कि हुआ क्या ? तब तक मैं उसकी जाँच करता हूँ। आप बताइये। मै सुनता जाता हूँ।

दाजी . क्या बताऊँ, अपना सिर। यह यहाँ आया—किसी भी भोसले ने शिरके के घर मे आज तक कदम नहीं रखा था—पर यह आया—

चकोरी · यूँ ही नहीं आये थे ये। मैंने इन्हें बुलाया था।

दाजी : अच्छा, अच्छा। तूने बुलाया था इसीलिये आया। मुझसे हुज्जत करने लगा—

चकोरी : इन्होंने कोई हुज्जत नही की। दाजी ही इन पर एकदम टूट पडे और इनका गला पकड कर—

दाजी : सच कहता हूँ डाक्टर, मैंने इसके गले को हाथ तक नही लगाया। मैंने अपना हाथ सिर्फ आगे बढाया था।

चकोरी : नही! आपने इनका गला दबाया।

दाजी : सच कहता हूँ डाक्टर, मैंने सिर्फ हाथ बढ़ाया था उसका कन्धा पकड़ने के लिये।
(डाक्टर उनके प्रत्येक वाक्य पर हुँकारी देते है। वह हुँकारी वाक्य के अनुरोध से अलग-अलग प्रकार की होती है)।

डाक्टर : (गहरी सास लेकर) हूँ! मुश्किल है! आप जानते हैं कि दाजी साहब, इसके नाना हार्ट-फेल से मरे थे। इसके पिता का भी हार्ट बहुत कमजोर है।—और अब यह—थोडा पानी लाइये—

दाजी : अरे दिनू! ए दिनू, कहाँ मर गया है यह। चकोरी, तुम्हीं जाओ बेटी और थोडा पानी ले आओ। जाओ, उठो।

डाक्टर : नहीं-नहीं। इसे यहीं रहने दो। रोगी को इन्जेक्शन देना है। हाथ दबाने के लिये इसकी जरूरत होगी। आपसे वह न हो सकेगा। जाइए—जल्दी पानी ले आइये।

(अरे दिनू, अरे दिनू, पुकारते हुये दाजी साहब भीतर जाते है।)

डाक्टर : (चन्द्र से) डरना मत चन्दू ! मैं सिर्फ सूई चुभाऊँगा। उसमें दवा-ववा कुछ नही रहेगी। बिल्कुल अचेत-से पडे रहना। जरा भी हलचल न करना। जब मै हाथ दबाऊँ तो चट-से आखें खोल देना—(जोर-से) अजी, पानी लाइये जल्दी।

दाजी : (भीतर से आते हुये) यह रहा पानी। होश में आया क्या वह ?

डाक्टर : होश मे ? हँ! बच जाय तो भाग्य समझिए। वैसे मरने में अब कसर ही क्या रही है ? मरा जैसा ही है। पर कोशिश करना हमारा काम है। (डाक्टर एक इजेक्शन लगाते है।)

दाजी : (सिर पीटकर) भगवान जाने क्या लिखा है मेरी किस्मत में ? अब वह भोंसला आकर मेरे प्राण ले लेगा। दिया इजेक्शन !

डाक्टर : हाँ। इस कोच पर दो तकिये तो रखो चकोरी, और दाजी साहब, आप जरा इधर आइये ! थोडा हाथ तो लगाइये इसे !

दाजी : इसे ? और मैं हाथ लगाऊँ ? इस भोसले को ?—

डाक्टर : आग लगाइये उस दुश्मनी को ! पहिले इधर आइये !

किशोरी . (द्वार से आते हुये) कहाँ है मेरा दादा ? हाय भग-

वान । क्या हो गया है इसे, डाक्टर ? (फूट-फूटकर रोती है—दादा ! दादा ! मेरा दादा !)

डाक्टर : चुप रहो किशोरी ! एक शब्द भी कोई न बोले यहाँ । आइये दाजी साहब ! जरा हाथ लगाइये !

दाजी : प्राण चल जाएँ, पर मै इसे हाथ नही लगाऊँगा ।

डाक्टर : प्राण जाने का ही समय आ गया है । पर आप पर नहीं, इस बेचारे लडके पर—

आबा : (द्वार मे से आते-आते) कहाँ है मेरा बेटा । हाय भगवान ! यह क्या देख रहा हूँ ? वह जिंदा तो है न डाक्टर ? बोलिए—बताइए डाक्टर ! वह है न ?

डाक्टर : इंजेक्शन दे दिया है । नब्ज भी हाथ को लगने लगी है कुछ-कुछ !

आबा : क्या हुआ ? यह कैसे आया यहाँ ?

चकोरी : मै ले आई थी इन्हें यहाँ ।

आबा : तू-तू ? शिरनामे है न तू ! शिरके की लड़की है तू । मुझे धोखा दे रही थी—

दाजी : तू कहाँ गई थी इन्हे धोखा देने ?

आबा : मेरे घर आई थी यह ।

दाजी : आपके घर कैसे आ गई थी ?

डाक्टर : अब आप लोग चुप भी रहिये न ? यहाँ बिल्कुल बात न कीजिये । यह देखिए । यह देखिये अब वह आँखें

खोलने लगा है । दूर हो जाओ सब । उसके पास भीड न लगाओ ।

आबा : (भर्राये हुये कठ से) बच जाएगा न मेरा बेटा । चाहे जो कीजिए, पर उसे बचा लीजिये । उस पर मै अपने प्राण निछावर कर दूँगा । इकलौता बेटा है यह—इसके बाद तो वंश ही समाप्त हो जायेगा ।

डाक्टर : मै आप लोगो से कह रहा हूँ—जरा चुप रहिए न । यह देखिए उसने आँख खोल दी । हँ-हँ हिलो-डुलो नहीं । चुपचाप पडे रहो ।

चन्द्र : (खिची हुई आवाज मे) आबा साहब—किशोरी—आ गये आप लोग ? मै चला । आपसे मुलाकात हो गई—इतना ही सतोष है । अब—

आबा . ऐसी अशुभ बात न कहो, बेटा ! तुम जल्दी अच्छे हो जाओगे ।

चन्द्र : अब मै क्या अच्छा होऊँगा । हो गया ! मेरा खेल खत्म हो गया । गुलामी में पैदा हुआ था और स्व-राज्य में प्राण छोड रहा हूँ—यही सौभाग्य है । अंत में एक ही प्रार्थना है—उस गुलामी के साथ सात पीढ़ियो से चली आ रही हम दो खानदानो की दुश्मनी भी अब चली जानी चाहिए । शिरके और भोंसले की मित्रता देख लूँ तो फिर सुख से—

डाक्टर : हँ-हँ । बोलो मत—बोलो मत—बोलने मे तुम्हें कष्ट होगा चन्द्रू ।

आबा : यह इस तरह क्या कर रहा है डाक्टर ?

चन्द्र : दाजी साहब, यह मेरी अन्तिम इच्छा है। मै अपराधी हूँ आपका—सिर्फ यही एक इच्छा है इस देह को छोडने से पहले—

डाक्टर : दाजी साहब, 'हाँ' कह दीजिए ! आबा साहब 'हाँ' कह दीजिये। आप लोगो के 'हाँ' कह देने से उसे जरा अच्छा लगेगा और हो सकता है कि उसके प्राण भी बच जाएँ उसके कारण।

किशोरी : 'हाँ' कह दीजिए आबा साहब।

चकोरी : 'हाँ' कह दीजिये दाजी साहब।

आबा : क्या करूँ ? क्या करूँ ?

किशोरी : डाक्टर-डाक्टर ! देखिए-देखिए, दादा कैसा-कैसा कर रहा है !

आबा : क्या करूँ—क्या करूँ ? क्या 'हाँ' कह दूँ ?

किशोरी : यह हत्या आपके माथे पडेगी दाजी साहब !

दाजी : मै 'हाँ' कहता हूँ।

चन्द्र : (खिची हुई आवाज मे) मेरे सामने आप दोनो हाथ मिलाइये—

आबा : यह देख, यह देख, हम दोनो ने हाथ मिलाये—

आबा-दाजी : आज से शिरके और भोसले की दुश्मनी मिट गई।

चन्द्र : अब मै सुख से मरूँगा।

आबा-दाजी : ऐसा न कहो बेटा। तू अच्छा हो जा। हम दोनो अब एक हो गये।

डाक्टर : अच्छा, अब आप सब लोग जरा हट तो जाइये यहाँ से—

किशोरी : डाक्टर, दादा ने आँखें फिर क्यो बन्द कर ली ?

डाक्टर : मुझे जरा जाँच करने दो, दूर हटो । अब डरने की कोई बात नही । (उसकी जाँच करते हुये) आध घंटे के बाद एक और इंजेक्शन देना होगा । आपका लडका बच गया, आबा साहब !

दाजी : और मेरा जमाई—

चकोरी : सच दाजी साहब ? क्या आप सच कह रहे है ?

आबा : हाँ । यह सच है, मेरी बहूरानी ।

किशोरी : क्या यह सच है भाभी ?

चकोरी : ओह ! मै कितनी खुश हूँ आज, मेरी प्यारी ननद !

डाक्टर : अरे वाह, तुम लोगो ने तो रिश्ते भी जोड लिये । पहले तो सीढी पर भी कदम नही रखते थे—

दाजी : किसी विशेष कारणवश ही क्यो न हो, पर आबा साहब ने आज दाजी साहब शिरके के घर की सीढी पर कदम रखा !

आबा : नही—बिल्कुल नही ।

दाजी : फिर घर मे कैसे आए ?

आबा : सड़क से छलाग मारकर सीढियो और देहलीज पर पाँव न रख, सीधा इस कमरे में आकर गिरा हूँ । तुम्हारी सीढ़ी पर कदम नहीं रखा (हँसते है । सब

लोग भी हँसते है।) जरा देखना तो था तुम्हें ? जब वह याद आती है तो मुझे अपने आप पर ही हँसी आ जाती है।

डाक्टर : अब आप सब लोग यहाँ से जरा चले तो जाइये। इसे बिल्कुल चुपचाप पडा रहने दीजिये। इसे कम-से-कम एक सप्ताह तक इसी तरह बिल्कुल स्वस्थ लेटे रहना होगा। चलिए,छोडिये- यह कमरा।

किशोरी : चलिये आबा साहब—

आबा : चलिये दाजी साहब—(तीनो जाते है।)

चन्द्र : (धीरे-से) क्या मै अब उठकर बैठ जाऊँ, डाक्टर ? आपने बडे अहसान किये हम पर। यह सारा श्रेय आपको है।

डाक्टर : अब तुम बिल्कुल बोलो नहीं। चुपचाप पडे रहो एक हफ्ते तक और यह नर्स तुम्हारी सेवा करेगी। अब आध घन्टे के बाद तुम सभी को इंजेक्शन देता हूँ। (बोलते-बोलते, हँसते हुये जाते है।)

चन्द्र : हो गया ?

चकोरी : हो गया।

चन्द्र : तुम क्या सोचती हो ?

चकोरी : रोमियो मूर्ख था।

चन्द्र : मेरा ख्याल है कि जूलियट सौगुनी मूर्ख थी।

चकोरी : और उसकी वह नर्स सहस्र गुनी मूर्ख थी।

चन्द्र : और मेरी यह चकोरी—

चकोरी : और मेरा चन्द्र—

[परदा]

५

वह क्यों चली गई ?

पहला दृश्य

[मध्यम-श्रेणी के परिवार के घर का बैठकखाना । उसे वे ड्राइङ्ग-रूम कहते हैं । सेकड-हैंड फर्नीचर तरीके से रखा है । फर्नीचर पुराना है, पर ठीक-ठाक दिखता है । दीवाल पर खूटियाँ है । उन पर कपडे हैंगर के सहारे टँगे है । एक कोने मे किताबो से भरा शेल्फ है । आस-पास एक-दो ट्रक, एक स्टूल आदि सामान भी तरतीब से रखा हुआ है । जिस समय परदा उठता है उस समय रंगमच पर कोई नहीं होता । थोड़ी देर के बाद निर्मला जाती हे । उसे लोग बहुधा निमी कहते है ।]

निर्मला : (इधर-उधर देखकर बुदबुदाती हुई) *अभी तो यहीं थे ! इतने में कहाँ चल दिये ?* (पीछे की तरफ जाने का दरवाजा खुला है । वहाँ जाती है और झाँककर

बाहर देखती है।) *यहाँ भी नही है।* (देखकर) *हँ! छड़ी नहीं दिख रही है। हैंगर पर शर्ट भी नही है। लगता है, बाहर चल दिये!* (पुनः दाहिने ओर के दरवाजे से भीतर चल देती है।)

[उसके भीतर जाते ही खंडेराव प्रवेश करता है। यह व्यक्ति अच्छा मोटा-ताजा है। लबा कुरता पहिने है। काछ-कसी धोती पहिने है। पैरो मे जूते है। उसका ठाट-बाट पहलवान जैसा है। बाते ऊँचे स्वर मे करता है। भीतर आते ही इधर-उधर निगाह फेंकता है और जिस दरवाजे से निर्मला गयी है उस दरवाजे से भीतर झाँककर देखता है और पुकारता है।]

खंडेराव : *रमेश! जी रमेश!* (ठहरता है—और आवाज चढाकर फिर से पुकारता है।) *रमेश! रमेश! अरे, घर मे कोई है या नही?*

निर्मला : (बाहर आकर) *कौन है?* (देखकर) *अच्छा आप है?*

खंडेराव : *मै नही तो और कौन? इतने जोर से चिल्लानेवाला मेरे सिवा और कौन है इस दुनिया मे? रमेश कहाँ गया?*

निर्मला : *यही तो मै भी पूछ रही हूँ।*

खंडेराव : *किससे?*

निर्मला : *किसी से नही। अभी-अभी यहाँ थे। एक मिनट के लिए ही मै भीतर गयी थी। बाहर आकर देखा तो यहाँ कोई नही। शायद कही बाहर चल दिये है। जाते वक्त कम-से-कम मुझे पुकार कर बता तो देना*

था। अब देखिए, आप आ गए, आपने पूछा कि कहाँ गए ? तो अब बताइए, आपको क्या जवाब दूँ ? बस, यही चल रहा है इस मकान में रोज ! और बेवकूफ मैं बनती हूँ। बैठिए न ?

खंडेराव आज कुश्तियाँ है। दोनो देखने जाएँगे। यह कल तय हो चुका था। और यहाँ आकर देखता हूँ तो ये हजरत ही गायब हैं। कुश्तियो का टाइम हो रहा है। अगर जाना चाहूँ तो मुश्किल और न गया तो—पर न जाने से काम कैसे चलेगा ? पर जाऊँ भी कैसे ? मै चला गया और इसी समय कहीं वह आ टपका तो शिकायत करेगा कि मुझे छोडकर चला गया। यह बहुत बुरी आदत है उसकी। किसी भी काम को वक्त पर कभी न करेगा। (कुर्सी पर बैठ जाता है।) आप से क्या उसने कुछ नहीं कहा था, भाभी ?

निर्मला : कुछ तो नही कहा। (हँसकर) आज यह 'भाभी' कहाँ से ले आए ? जन्म-भर तो मुझे 'निम्मी' कहते आए हो। मेरा इतना अच्छा निर्मला नाम है। पर उसे इस तरह सक्षिप्त कर दिया है आप लोगों ने। पर आपने आज यह भाभी कहाँ से निकाला ?

खंडेराव : क्या मैंने अभी 'भाभी' कहा ?

निर्मला मतलब ?

खंडेराव : हाँ। शायद मैंने भाभी ही कह दिया। अभी जब घर से निकला तो उस वक्त मेरी भाभी घर में थीं…

निर्मला . *कौन ? सिधुजी ?*

खंडेराव : *हाँ जी। वही मेरी स्मृति में घूम रही थी और इसी-लिए यहाँ आकर तुमसे भी 'भाभी' कह दिया।*

निर्मला . (हँसकर) *आपका तो यह स्वभाव ही है। फिर भी गनीमत है जो भाभी ही कहा। घर में आपकी दादी भी तो है। आपके घर से निकलते समय कही वे आपके सामने आ जातीं, तो यहाँ आकर मुझे 'दादी' भी कह देते आप।*

खंडेराव . *हाँ, यह कोई बिल्कुल असम्भव नही था। मुझ से नामों की भूल हमेशा हो जाती है।* (थोडी देर ठहर कर सिर खुजाता हुआ) *सच ? अब क्या करूँ ? जाऊँ ? या न जाऊँ ?*

निर्मला : *क्या टिकट खरीद लिये है पहिले से ?*

खंडेराव : *टिकट वही निकालने वाला था—कही भूल तो नहीं गया ? वरना इस वक्त उसे कहीं जाना नहीं चाहिए था—*

[इन्दु आती है। निर्मला से उसका परिचय नही है। उम्र मे निर्मला से वह कुछ छोटी है। दिखने मे भी छोटी-ही लगती है। खंडेराव भी उसे नही पहचानता। उसकी पोशाक साफ-सुथरी है। वैसे बहुत भडकीली नहीं, पर बिल्कुल मामूली भी नही। उसकी मुद्रा प्रसन्न और वाणी मीठी है।]

इन्दु : (भीतर आकर दोनो को देखकर रुक जाती है और इधर-उधर देखती है।) *रमेश—रमेश गिडे क्या यहीं रहते*

हैं ? (निर्मला उसे कोई जवाब न देकर सिर्फ उसकी ओर देखती रहती है।) मै घर भूल गयी शायद ! ४०६ नम्बर ही है न इस घर का ? हाँ ! मैने ठीक-से देख लिया है। भूली नही हूँ। (खडेराव भी उसकी ओर देखता रहता है।) रमेश गिंडे यहीं रहते है न ?

खंडेराव : हाँ।

इन्दु : कहाँ हैं वे ?

खंडेराव . यही तो मै इससे पूछ रहा हूँ।

इन्दु . किससे ?

खंडेराव : इससे। उसकी इस पत्नी से।

इन्दु : फिर क्या बताया उसने—जी, उन्होने ?

निर्मला : कुछ भी नहीं बताया उन्होंने। (थोडी रुखाई से) क्या काम है तुम्हारा ?

इन्दु : मुझे मिलना है उनसे।

निर्मला : (जरा चिढकर) क्या खूब कसमसाकर मिलना चाहती हो ?

इन्दु . यह क्या कह रही हैं आप ? मैने तो बिल्कुल सहज भाव से कहा। उन्होंने एक विज्ञापन दिया था। (रुक जाती है।)

खंडेराव . विज्ञापन दिया था ? काहे का ?

इन्दु : उन्हें एक सेक्रेटरी की जरूरत है। (निर्मला को ओर देखकर) मेरे अक्षर सुन्दर हैं—देवनागरी और अंग्रेजी दोनों। मै लिख भी बहुत जल्द लेती हूँ। टाइपिंग भी

कर सकती हूँ—दोनों अंग्रेजी और हिन्दी—याने मराठी। मराठी टाइप करना बडा कठिन हो जाता है "क्त" जो नहीं है न उसमें और "य" में आधार जोडते नही बनता।

निर्मला : ठहरो! विज्ञापन अगर दिया भी होगा तो वह मैंने नहीं दिया है। वे आयेंगे तब उनसे बात कर लेना।

इन्दु : माफ कीजिए। आपको तकलीफ दी।

खंडेराव . मै सोचता हूँ कि अब मै चल दूँ। (चार कदम जाता है और फिर पीछे मुड़ जाता है।) देखा निम्मी, कहने को तो मैने कह दिया कि मुझे जाना चाहिए। पर सवाल यह है कि मै जाऊँ कहाँ और कैसे जाऊँ?

निर्मला : क्यों? क्या आप वह स्थान नही जानते?

खंडेराव : स्थान तो जानता हूँ जी। (जरा जोर-से ही हँसता है।) पर जाऊँ कैसे? टिकट तो वही निकालने वाला था। यहाँ क्या धरा है मेरे पास? (कुरते के दोनो जेब उलटकर दिखाता है।) देख लो, दोनो जेब खाली है। (निर्मला हँसती है।) हँसो मत। देख लिया? यह हालत है इधर!

निर्मला : तो उनके आते तक यहीं बैठिए।

इन्दु : क्या मै भी बैठूँ?

निर्मला : यह मै क्या बताऊँ? तुम्हारी इच्छा पर है। चाहो तो बैठो और चाहो तो चली जाओ!

इन्दु : पर वे तो आ रहे हैं न?

निर्मला : आने-जाने के बारे में वे मुझसे कुछ नहीं कह गये हैं।

इन्दु . (खडेराव की ओर देखकर) क्यों साहब, क्या करूँ ? क्या यहाँ बैठी रहूँ ?

खंडेराव : यही सवाल तो मेरे सामने भी है।

निर्मला : (हँसती है।) अब दोनो यहीं बैठे रहो। आज आपको कुश्तियाँ देखने को नहीं मिलती, खडेराव जी। अभी तक उनके आने का ठिकाना नहीं है। अब कब वे आएँगे और कब आप जाएँगे ? और तुम भी—क्या नाम है तुम्हारा ?

इन्दु : इन्दुमती—इन्दुमती कुलकर्णी !

निर्मला : कुलकर्णी ? (खंडेराव से) क्यों जी, कुलकर्णी कौन होते है ?

खंडेराव : कुलकर्णी हिन्दू तो जरूर ही होते हैं। ईसाइयों और मुसलमानों मे कोई कुलकर्णी है, ऐसा मैंने अभी तक नही सुना। मराठी बोल सकती है, इसलिए महाराष्ट्रीय तो ये हैं ही—और फिर कुलकर्णी !

निर्मला . यह मेरे प्रश्न का उत्तर नही।

इन्दु : आप के प्रश्न का उत्तर मै दिए देती हूँ। क्या आप मेरी जाति जानना चाहती है ? मैं देशस्थ ब्राह्मण हूँ। पिछले साल ही मै बी० ए० हुई हूँ। फिलहाल एम० ए० के टर्म्स भर रही हूँ। और क्या जानना चाहती हैं आप ? मेरे माँ-बाप जिन्दा नही। नजदीक का

कोई रिश्तेदार भी नही। मै यहाँ एक होस्टल में रहती हूँ। पिताजी मेरे नाम कुछ पैसा जमा कर गये थे। उस पर अभी तक गुजर होती रही। अब आगे की चिन्ता है। इसीलिये अखबार में एक विज्ञा-पन देखा और यहाँ चली आई।

निर्मला : *अब यह सब उन्ही को बताना जब वे आ जाएँ।*

इन्दु : *वे कब आएँगे ?*

निर्मला : *यह मै नही जानती।*

[इन्दु उन दोनो की ओर घुटनो पर हाथ रखे देखती हुई बैठी रहती है। कुछ क्षणो के लिये कोई कुछ नही बोलता। इसी समय भीतर से आवाज आती है—'माफ करना, खण्डू !' यह कहता हुआ रमेश प्रवेश करता है। वह साधारण पोशाक मे है। सिर पर टोपी नही है। वह शायद कही पास ही गया था, क्योकि उसका पेंट और शर्ट हेगर पर टँगे है। वह स्वभाव से बडा गड-बडिया है। दिखने मे सुन्दर है। उसके बाल कघी किये हुये है। कलाई मे सोने की घडी है। वह जल्दी-जल्दी प्रवेश करता है।]

रमेश : *माफ करना, खंडू ! आँ ? यह कौन ?*

निर्मला : *अब आप से क्या कहा जाए ? गये थे तो कम-से-कम कहकर जाना था। ये लोग आकर आपके लिये कब से बैठे है !*

रमेश : *हाँ भई, थोडी गलती तो हो गई।*

खंडेराव : *गलती क्या हो गयी, जनाब ! अब तक कुश्तियाँ*

खत्म भी हो गई होगी। टिकट भी निकाले थे तुमने ?

रमेश : काहे के टिकट ? कुश्तियों के ? अरे यार, मै तो भूल ही गया। अच्छा ! हाँ, (इदु से) आप कौन है ?

इन्दु . (रमेश के आते ही वह उठकर एक ओर खडी हो गई थी।) आपने विज्ञापन दिया था…

रमेश : विज्ञापन ? अरे हाँ, सच तो है ! अच्छा, तो उस विज्ञापन को देख कर आप आई हैं ?

इन्दु : जी ! बडी कठिनाई मे हूँ मै…

रमेश : किसी की कठिनाई को दूर करने का विज्ञापन मैने नही दिया था !

इन्दु . मेरे कहने का यह मतलब नहीं। विज्ञापन में लिखी सारी शर्ते मै पूरी कर सकती हूँ।

रमेश · क्या तुम सारी शर्तें पूरी कर सकोगी ? क्या-क्या आता है तुम्हें ? लिखना-पढना आता है ? हाँ—तो लिखना तो आता है ? हाँ—टाईपिग आता है ? हाँ, और क्या-क्या आता है ? चलने आता है—बोलने आता है—गाना आता है ? नाचना आता है ?

इन्दु : नही-नही-नही-नही। मुझे गाना और नाचना नहीं आता। सिर्फ चलना और बोलना आता है।

रमेश अच्छा, चलना और बोलना आता है ? तब तो कहना चाहिए कि तुम्हें काफी आता है।

खंडेराव : क्या कुश्तियाँ देखने नही चलोगे ?

निर्मला : मुझे जाना था आज भगिनी-समाज की एक सभा

में । आप घर में नहीं थे इसलिये अभी तक रुकी हूँ...

रमेश : तो फिर जाओ न...

निर्मला : और अगर किसी ने चाय माँगी तो कौन देगा ?

रमेश : हाँ, यह भी सच है । मै तो भूल ही गया था !

खंडेराव : अरे भई, पर कुश्तियों का क्या करते हो ?

रमेश : आओ, अब हम दोनों यही कुश्तियाँ लडें। देखने वाले ये दो दर्शक यहाँ हाजिर है ही—चाहे दर्शिकाएँ कह लो ! (अकेला ही हँसता है।) अरे, तुम लोग भी हँसो न ? क्या मजा है—तुम मजाक की कद्र नही करती ? और यह भी, जो अभी नयी आई है—क्या नाम बताया जी तुमने अपना ? हाँ-हाँ-हाँ, इन्दुमति-इन्दुमति ही न ? क्यो इन्दुमति जी, तुम भी नही हँसी ? तो तुम सेक्रेटरी का काम कैसे करोगी ?

इन्दु : सेक्रेटरी अगर हँसती रहेगी, तो लेखक लिखेगा कैसे ?

निर्मला : अब देख लीजिए आप ? जितना यह समझती है, उतना भी आप नहीं समझते। और यह होगी आपकी सेक्रेटरी और आप है लेखक !...

रमेश : तो क्या उसी से कह दूँ लिखने के लिए ? क्यों जी, क्या तुम लिख लोगी ? अरे हाँ, पर ठहरो ! आप से यदि 'तुम' कहूँ तो कोई हर्ज तो नहीं ?

इन्दु . मुझे अपने लिए 'आप' सुनने की आदत ही नहीं है।

रमेश : हाँ, यह एक अच्छी बात है। मै हूँ देहाती आदमी —कोकरण का रहने वाला। आदर सूचक सर्वनाम हमारी भाषा मे विशेप है ही नहीं। अच्छा तो अब ··

खंडेराव · अब क्या कुश्तियाँ देखने को मिलेंगी ?

रमेश : अरे वाह! शाबास! अभी तक कुश्तियाँ ही घूम रही है तुम्हारे दिमाग मे ? मै कहता हूँ, क्या देखना है उन कुश्तियों मे ? दो साड जिन पर काफी मस्ती छायी होती है, एक दूसरे को टक्कर मारते रहते है···

खंडेराव . मै कुश्ती का वर्णन नही सुनना चाहता। तुम उसे सुनाने की तकलीफ न करो। कुश्तियों का वक्त टल गया है। वे अब देखने को न मिलेंगी। सुना है पंजाब से कोई पहलवान आया है। पर तुम्हारी इस गडबडी के कारण मै कुश्तियाँ न देख पाया।

इन्दु : क्या और भी कुछ पूछना चाहेंगे मुझसे ?

रमेश . अरे हाँ। सच तो है ? मुझे अभी कुछ पूछना था— क्या पूछना था भला ? हाँ, क्या तुम्हारी शादी हो गई है ?

इन्दु : जी नहीं।

रमेश : क्या शादी करने का विचार है तुम्हारा ?

इन्दु : मैने शादी के बारे मे अभी तक कुछ तय नहीं किया है।

निर्मला : *ये लच्छन अच्छे नही —*

रमेश : *क्यों-क्यों-क्यों—क्या बुरा है इसमे ?*

निर्मला : *इसे आप नहीं समझ सकेंगे।*

खंडेराव : *हाँ। वह सच कह रही है।*

इन्दु : *क्या सच कह रही है ? क्या आपकी शादी हो गई हैं ?*

खंडेराव : *अरे वाह, यह तो मुझी से पूछ रही है ?*

रमेश : *हाँ। तो फिर बता दो उसे। क्या डर रहे हो ?*

निर्मला : *देखिए, ऐसे वाहियात प्रश्न पूछने का उसे मौका न दीजिए। वह जानती भी नहीं कि ये कौन हैं। परीक्षा देने आई है वह* (रमेश की ओर अंगुली दिखाकर) *इनके पास।* (खंडेराव की ओर अगुली दिखाकर) *और ये है इनके मित्र। तो एक तरह से ये भी इसके कौन हुये ?—*

खंडेराव : *ऐम्प्लायर।*

निर्मला : *एम्प्लायर—याने दोनों इसके लिये एक समान ही है। कल* (रमेश की ओर अंगुली दिखाकर) *इनसे भी वह यही प्रश्न पूछने लगेगी।*

रमेश : *बेशक पूछेगी। मैं कहता हूँ, क्यों नहीं पूछना चाहिए। वह कोई सर्वज्ञ तो है नहीं। बी० ए० पास हो जाने से कोई सर्वज्ञ नहीं हो जाया करता। दुनिया में ऐसी अनेक बातें है जिन्हें बी० ए० पास लोग नहीं जानते। जो बी० ए० नहीं होता, वही यह सारी जानकारी प्राप्त करता रहता है—*

खंडेराव : यह अपने पर से कह रहे हो शायद ?

इन्दु : याने—याने—ये क्या—

निर्मला : हाँ-हाँ-हाँ, याने—ये बी० ए० पास नहीं है। शायद मैट्रिक पास हो गये है। कितनी बार में जी ?

रमेश : अरे हाँ, सच तो है ! कितनी बार में ? चौथी या पाचवी ? क्यों जी खडू, कितनी बार मे पास हुआ था मै ?

खंडेराव : चौथी ही बार में पास हो गये थे—पाँचवी बार नहीं ली तुमने।

रमेश : हाँ, चौथी ही बार मे। यह हाल रहा मेरी पढ़ाई का। इसीलिये मुझ जैसे को बी० ए० पास पत्नी चाहिये…

निर्मला : मै मिल गई न, इसलिये ! वरना ऐसे एक दर्जन बार मैट्रिक मे बैठने वाले के साथ कौन विवाह करने वाला था ?

खंडेराव : ऐसा मत कहो ! रजनी को तो जानती हो न ? एम० ए० पास हो गई है। अभी कुछ दिन पहिले ही उसने एक मारवाडी से विवाह किया है जिसे ए बी सी डी भी नहीं आती।

रमेश : पर खूब पैसा जो है। दरवाजे पर तीन मोटरें खडी रहती हैं। एक सुवह के लिये, दूसरी दोपहर के लिये और तीसरी शाम के लिये, अगर वह कह दे तो रात के लिये भी चौथी मोटर आ जायेगी। ये जब ऐसी शादियाँ होती हैं…

इन्दु : क्या और भी कोई सवाल पूछना चाहते मुझे से ?

रमेश : अरे हाँ, सच ! अभी तक क्या-क्या पूछ लिया मैने ? देखो जी, अगर तुम मेरी सेक्रेटरी बनना चाहती हो तो सब से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मै अकसर जो इस तरह भूल जाया करता हूँ, वे सब बातें तुम्हें याद रखनी होंगी। समझी ?

इन्दु . जी। आप चिन्ता न करे। मेरी स्मरण-शक्ति बडी तेज है। हाँ—(झिझकती हुई) पर मै जानना चाहती थी—क्षमा कीजिये—मुझे कुछ संकोच हो रहा है —क्या मै पूछ सकती हूँ—पूछूँ ?

रमेश : क्या पूछना चाहती हो ?

निर्मला : मै बताती हूँ। आप मुख्य बात ही भूल गये है। आप उसे वेतन क्या देगे, यह बताइये।

रमेश : अरे हाँ, सच तो है ! मै वेतन क्या दूँगा ? (सिर खुजाकर) बोलो, कितना वेतन चाहती हो तुम ?

निर्मला : यह उससे क्या पूछते हो ? वह तो बहुत लम्बा वेतन माँगेगी। आप ही उसे बता दें कि आप कहाँ तक देख सकते है ?

रमेश : पर घर का हिसाब-किताब मै क्या जानूँ ?

खंडेराव : फिर कौन जानता है ? निमी ?

निर्मला : हाँ। मै ही जानती हूँ। पर इन्होने मुझे पहिले कोई बात नहीं बताई ! विज्ञापन देते वक्त भी मुझसे नहीं

पूछा था । अब अगर मैं कोई संख्या बता दूँ और इसे वह मंजूर न हो । और चली जाए ··

इन्दु . नहीं नहीं ! ऐसा नहीं होगा । मैं जाऊँगी नहीं, आप विश्वास रखें !

रमेश : यह भी क्या आफत आ पड़ी है । मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि विज्ञापन देने के बाद इतनी जल्दी कोई आ धमकेगा । इसलिए इस विषय पर कोई विचार ही नहीं किया अभी·तक ।

खंडेराव : अगर करते भी, तो वह तुम्हें याद भी कहाँ रहता ?

रमेश · हाँ । यह भी सच है । अच्छा, जरा ठहरो । (कुछ सोचकर) अब यही उपाय ठीक है ! हाँ—क्या है तुम्हारा नाम ?—हाँ-हाँ—इन्दुमति-इन्दुमति ही न ? हाँ । तो बताओ इन्दुमती जी, तुम कितना वेतन चाहती हो ?

इन्दु : जी—यह सवाल तो बड़ा कठिन है । मान लीजिये मैंने कोई संख्या बताई और आपको वह न जँची तो यहाँ से मुझे असफल होकर ही जाना पड़ेगा । इससे तो आप ही बता दीजिए । (निर्मला की ओर देखकर) नहीं तो आप बता दें ।

निर्मला : सेक्रेटरी की जरूरत उनको है—मुझे नहीं । वे किस स्तर का सेक्रेटरी चाहते हैं यह उन्हीं को तय करना होगा और उस स्तर के अनुसार ही वेतन रहेगा । अगर कोई रसोईदारिन, नौकर या नौकरानी रखनी

होती, तो उन्हें क्या वेतन दिया जाए यह मै वताती । सेक्रेटरी के बारे में मै क्या बताऊँ ? कम-से-कम बंडू लाला ही होते…

रमेश . अरे हाँ, सच तो है ! बडू दिख नहीं रहा है । कहाँ चल दिया ?

खंडेराव : मेरा ख्याल है वह कुश्तियाँ देखने गया होगा ।

निर्मला : कुश्तियाँ, देखने क्यों जाने चले वे ? गये होगे किसी लड़की को लेकर सिनेमा देखने ।

रमेश : अजी, चुप भी रहो । पराये व्यक्ति के सामने तो कम-से-कम ये बातें मत बताओ ।

इन्दु : पराया कौन है यहाँ ? कल जब आप मुझे नौकरी दे देंगे तो क्या मै भी आप ही के परिवार की नहीं हो जाऊँगी ? वैसे देखा जाये तो…

रमेश : अरे हाँ, तुम तो होस्टल में ही रहती हो न ? फिर मैं कहता हूँ, (निर्मला की ओर देखकर) यहीं आकर रहने लगो न । (निर्मला से) तुम्हारा क्या ख्याल है ?

निर्मला : तो क्या आप उसे सिर्फ खाना-कपडे पर ही नौकर रखना चाहते है ? बंडू लाला रहते है यहाँ ! यह तो आप नही भूल गये न ?

खंडेराव : हाँ, यह तो जरूर सोचने की बात है वैसे बडू लडका अच्छा है । नौकरी भी करने लगा है । इसलिये अपनी इज्जत का ख्याल जरूर रखेगा…

निर्मला : यह नौकरी ही तो बडा गजब ढा रही है । उनके

आफिस में साठ फी सदी लड़कियाँ काम करती हैं—

खंडेराव : माई गाड !

इन्दु : इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं । हमारे कालेज में, बी० ए० में जिन्होंने मराठी विषय लिया था, ऐसे कुल पचास विद्यार्थी थे । उनमे ४७ लडकियाँ थीं और ३ लडके थे । आज के आफिसों मे भी आपको यही अनुपात नजर आने वाला है ।

खंडेराव : फिर तुम भी क्यों नहीं चली गयीं ऐसे ही किसी आफिस में ?

इन्दु : कहाँ ? किसी आफिस में ? वहाँ का काम भी क्या कोई काम है ? या तो अंकों के साथ खेलते रहो, या किसी कागज में लिखे मजमून की नकल करते रहो या बैठे-बैठे टाईपिग करो । ऐसा नकली टाईपिग मुझे पसन्द नहीं ।

खंडेराव : फिर यहाँ और क्या करने वाली हो ? वही सब यहाँ भी करना होगा ।

इन्दु : नही । यहाँ की बात दूसरी है । यहाँ "क्रीयेटिव्ह वर्क" है । मैं यहाँ एक लेखक का हाथ बनूँगी । सिर उसका और हाथ मेरे !

रमेश : और फिर सिर पर हाथ धरे आराम से बैठी रहना ।

निर्मला : मुझे ये वाहियात बातें पसन्द नहीं । यह आपके लिये मजाक हो सकता है । परन्तु आप की बात का सच्चा मर्म मै समझ गयी हूँ ।

रमेश : अरे भई, इसमे कहाँ से आया मर्म-वर्म ?

इन्दु : नहीं-नहीं। वही ठीक कहती है। मुझसे ही गलती हो गई। मैंने सिर्फ वाच्यार्थ देखा…

रमेश · ठहरो-ठहरो ! अब झगडे पैदा हो जाएँगे । दो औरतें जब एक जगह आ जाती है …

निर्मला : तो वे लडने लगती है। क्यो, यही कहना चाहते हैं न आप ? (नजदीक से एक कुर्सी खींच उसके सामने बैठ जाती है।) क्यों जी, क्या आपका यही ख्याल रहा कि हम झगडने लगेंगी ? क्या आप हम औरतों को झगडालू ही समझते है। क्या आप यही कहना चाहते हैं ?

रमेश : कितना उलटा समझ लिया तुमने ? मेरा वाक्य कम-से-कम पूरा तो सुन लेना था ! मै कह रहा था कि दो औरतें जब एक जगह आ जाती है, तो उन दोनों के मन मिल जाते है और वे पुरुष की परवाह नही करतीं। उसे एक तरफ हटा देती है।

निर्मला वाह क्या खूब ! बात बनाना कोई आप से सीखे ! आप सच्चे लेखक हैं, इसमें शक नहीं । मुझे झूठा साबित करने के लिये अब आप बात बना रहे हैं। यह तो आपकी सदा की रीति है। इसीलिए मै सह लेती हूँ। दूसरी कोई होती, तो भगवान जाने क्या कर डालती ? (इदु से) देख लिया तुमने ? याद रखना इनकी आदत। इनका हाल है—'चित्त भी मेरी पुट भी मेरी और अंटा मेरे बाप का !' बात पल-

टने में इन्हें एक पल की भी देर नही लगती। तुम्हें आगाह किये देती हूँ ठीक से नोट कर लो।

खंडेराव : पहिले यह तो देख लो कि तुमने उसे नौकरी दी है या नही ? पहिले से ही उसे कुछ नोट करा देने से क्या फायदा ? शायद घबडा कर वह नौकरी करने से इंकार भी कर दे।

इन्दु : छि ! छि ! मै क्यो इकार करने चली ? नौकरी की मुझे सख्त जरूरत है—

निर्मला : यह ठीक है कि तुम्हें नौकरी, की जरूरत है। पर इस-लिये क्या तुम चाहे जैसी नौकरी कर लोगी ? तुम औरत की जात हो और औरतों को नौकरी करने से पहिले यह अच्छी तरह सोच लेना चाहिए कि कहाँ और किस प्रकार की नौकरी की जाये ?

इन्दु : यह सब सोचकर ही तो मै यहाँ आई हूँ। सोचा आप लेखक है और अब यह भी देख लिया (निर्मला की ओर लक्ष्य करके) कि आप भी है—

खंडेराव : याने ये विवाहित है। यही न ?

इन्दु . हाँ। इसलिये अब मुझे यह बात मालूम हो गई कि कम-से-कम यहाँ नौकरी करने मे कोई खतरा नहीं है।

निर्मला : (रमेश से) हाँ, तो फिर क्या तय कर रहे हैं ? दे रहे है इसे नौकरी ?

रमेश हाँ, क्या कहा ? सच तो है ! हम इसे नौकरी दे देंगे। हमें अब यह तय कर लेना चाहिये ! हमें याने तुम्हें और मुझे ··

निर्मला : मुझे कौन पुस्तकें लिखनी हैं ?

रमेश : वह बात नहीं। बात यह है कि ऐसा व्यवहार हमारे घर आज प्रथम बार ही हो रहा है । इसमें तुम्हारी राय ले लेना उचित है और अच्छा भी है। मैं सोच रहा था…

(भीतर से 'दादा ! दादा !' पुकार सुनाई पडती है। और उसी समय बन्टू भीतर आता है। वह एक अत्यन्त चालाक दिखने वाला बीस-बाईस वर्ष का युवक है। काफी बक्की भी है।)

बन्टू : (भीतर आकर) सुना दादा—(देखकर) औं ? इन्दु, तुम यहाँ ?

निर्मला : याने ? क्या तुम इसे पहचानते हो, लाला ?

बन्टू : आप पहचानते हो, पूछ रही हैं ? अब आप से क्या कहूँ ? हाँ, सच भी तो है। मैंने आपसे अभी तक कुछ कहा ही नहीं। मुझे आप से पहिले ही कह देना चाहिये था, भाभी। यह मुझे मिली थी…

इन्दु : (उठकर बन्टू से) जरा चुप रहिये। मैं यहाँ नौकरी माँगने आई हूँ।

बन्टू : नौकरी ? यहाँ कौनसी नौकरी धरी है तुम्हारे लिये ?

रमेश : अरे भई, परसों मैंने एक विज्ञापन दिया था न, कि मुझे एक सेक्रेटरी की जरूरत है।

बन्टू : तो आपकी सेक्रेटरी बनने आई है यह ! फिर क्या हुआ ? क्या सब तय हो गया ? दे दी इसे नौकरी ?

खंडेराव . वही तो तय हो रहा है। पर अब मैं सोचता हूँ कि तय होना जरा कठिन होगा। तुम हो यहाँ और इससे तुम्हारी पहचान है ! तुम ठहरे बेकार। दिन भर घर में डटे रहोगे। फिर इससे काम क्या होगा ?

इन्दु : आप व्यर्थ ऐसा न सोचें। वे कहते है कि उनकी और मेरी पहचान है ! पर होटल में मिली किसी भी लडकी को चाय पीने का निमन्त्रण देने वाले इन महाशय की पहचान का कोई महत्व नहीं होता। ऐसी पहचान ध्यान देने योग्य नही होती।

बन्डू . वाह, तुम तो खूब बन रही हो ! क्या हम दोनो सिर्फ एक ही बार मिले हैं ? हम लोग तो बिल्कुल…

इन्दु · मेहरबानी करके जरा खामोश रहिये। यहाँ मेरे जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित है।

रमेश · क्या तुम पहचानते हो इसे ?

बन्डू · पहचान की तो बात ही क्या है ? अब आप से क्या कह सकता हूँ ? यह मुझे रोक रही है इसलिये…

इन्दु : कृपाकर कुछ वाहियात बातें न बक देना यहाँ।

बन्डू : वाहियात बातें ? मैं कहता हूँ आप से दादा, कि मैंने अभी तक इससे सिर्फ विवाह की बात ही नहीं निकाली है। बाकी जो प्रेम-व्रेम क्या होता है न वह सब हो चुका है हम दोनो का। (बन्डू के बातें करते समय इदु बेचैन हो जाती है और वह निर्मला की ओर देखकर कानाफूसी करने लगती है।) अब तो होने को

सिर्फ विवाह ही रह गया है हमारा। यह कह रही थी —(इंदु की ओर देखकर) बता दूँ? (इंदु चुप रहती है।) यह मुझसे कह रही थी दादा, कि मुझे कोई नौकरी नहीं है और मैं ज्यादा पढ़ा-लिखा भी नहीं हूँ…

रमेश . और मै भी कहाँ ज्यादा पढा लिखा हूँ?

बन्हू : आपकी बात अलग है। आप लेखक है। और मै अपने को 'स्पोर्टस्मेन' कहलवाता हूँ। लेकिन कोई भी खेल मुझे खेलने नहीं आता। मैं यहाँ के प्रत्येक क्रिकेट मैच में, हाकी-मैच मे, टेनिस टूर्नामेंट में बैडमिन्टन और यहाँ तक कि पिङ्गपाग में टूर्नेट में भी बिला नागा हाजिर रहता हूँ। दर्शक की हैसियत से मेरा दर्जा बहुत बडा है। मुझे पूरा विश्वास है कि आज नहीं तो कल, कभी-न-कभी, यहाँ के मैचों में मैं अम्पायर बनाया जाऊँगा। रेडियो पर क्रिकेट की कमेन्टरी करने का मैने खास अध्ययन किया है। किसी दिन किसी मैच के वक्त आप अपने रेडियो पर मेरी कमेन्टरी सुनेंगे—आप देख लेना। बडे-बडे क्रिकेटियर्स मुझे पहचानते हैं। टेनिस का चेंपियन तो मेरा घनिष्ठ मित्र है। यह सच है कि मेरे इन सारे गुणों से मुझे आमदनी की कोई आशा नहीं। इसलिए मुझ से यह कहने लगी कि मुझे कोई नौकरी नही है…

इन्दु : (रमेश के पास जाकर) क्षमा कीजिए। मै आप से कहना चाहती हूँ कि इनकी ये बातें जरा सीमा के

बाहर जा रही है। ये अपने मन में एक विचार पाले बैठे हैं। मैंने कितनी ही बार इनसे कह दिया है कि उनका वह विचार बिल्कुल गलत है। पर ये उसी विचार को दाँतों से पकड़े बैठे है और मुझे व्यर्थ सता रहे हैं। मैंने कहा…

चन्दू . अरे वाह ! अब यूँ पैतरा बदल रही हो ? झूठ मत बोलो। क्या तुमने मुझ से नहीं कहा था कि मैं बेकार हूँ ?

इन्दु : हाँ। मैंने कहा था और आज भी कहती हूँ कि तुम बेकार हो। मुश्किल यह है कि तुम से क्या कहूँ ? क्या यह कहूँ कि तुम में नौकरी करने की कूवत नहीं है या यह कहूँ कि नौकरी प्राप्त करने की ? अगर कहती हूँ कि तुम में अक्ल नहीं है, तो तुम नाराज हो जाओगे। पर यह सच है कि नौकरी प्राप्त करने को तुम ने कभी कोई कोशिश नहीं की। विवाह की बातें करने से पहिले क्या यह आवश्यक नहीं कि गृहस्थी कैसी सजायी जाएगी इस संदेह का पहिले निवारण हो जाए ?

चन्दू : खैर छोड़ो इन बातों को। अब तुम्हें तो नौकरी मिल रही है न ?

खंडेराव यानी ? क्या तुम इसकी तनख्वाह पर जिओगे ?

चन्दू : इस में हर्ज क्या है ? क्या स्त्रियाँ आज तक अपने पतियों की तनख्वाहों पर नहीं जी रही थीं ?—

निर्मला : तो तुम क्या स्त्रियों की तरह जिओगे, लाला ?

चन्दू क्यों नहीं जीना चाहिए ? मैं पूछता हूँ क्यों नहीं

जीना चाहिए ? कुछ दिन पतियों के थे—अब स्त्रियों के आए हैं। आजकल स्त्रियों को चटपट नौकरी मिल जाती है। आजकल स्त्रियाँ आई० ए० एस० और बैरिस्टर भी होने लगी हैं। आजकल नौकरी मिलना किसी के लिए यदि कठिन है, तो वह सिर्फ पुरुषों के लिए हो गया है। खासी लम्बी तनख्वाह पानेवाली पत्नी मिल जाने पर पुरुष को नौकरी की क्या जरूरत है ?

इन्दु : (निर्मला की ओर देखकर) क्षमा कीजिए। मैं चाहती हूँ कि आप इनकी ये बातें थोड़ी देर के लिए बंद करा दीजिए। अभी मेरे बारे में क्या तय होना है वह पहिले हो जाने दीजिए।

रमेश : (जरा डाँटकर) बडू, बकवास बंद करो और जाओ उस कुर्सी पर भगवान की मूर्ति की तरह चुपचाप बैठ जाओ। जाओ।

बन्डू : प्रभु रामचन्द्र की आज्ञा अनुज लक्ष्मण को शिरोधार्य है। (वह जाकर चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ जाता है।)

रमेश : हाँ। क्या बताया था तुमने अपना नाम ? इन्दुमति ? इन्दुमति ही न ? हाँ, तो इन्दुमती जी, अब तुम क्या कहना चाहती हो ?

इन्दु : अब तो आपको ही कहना है। मुझे जो कहना था वह मै पहिले ही कह चुकी हूँ।

रमेश : क्यों निर्मी ? क्या कह दिया जाए इससे ?

निर्मला : विज्ञापन मैने नही दिया था।

रमेश : हाँ। यह सच है। पर मै तुम्हारी सलाह लेना चाहता हूँ। बताओ, हम इससे क्या कह दें ?

निर्मला : मै जो कहूँगी वह जँच जाएगा आपको ?

रमेश : यह भी कोई सवाल है ? तुमने कहा और मुझे नहीं जँचा, ऐसा कभी हुआ है ?

निर्मला : हजार बार ! पर इसे अभी छोड़िए। मेरा ख्याल है कि आप अपने लेखन के लिए कोई निश्चित समय नियत नही कर सकेंगे। आप इसे अगर किसी निश्चित समय पर बुलाएँगे तो अनेक बार ऐसा मौका आएगा कि वह आजाएगी और आप तैयार नहीं रहेंगे। अथवा ठीक उसी समय आपके बहुत से फालतू मित्र आकर आप से गप्पें ठोकते रहेंगे। और फिर इसका आना व्यर्थ होगा। आजकल यह होस्टल में रहती है। वह होस्टल भी यहाँ से कोई बहुत नजदीक नही है। आपकी इस अनिश्चितता के कारण इसका आना-जाना दोनो समय का अपव्यय ही होगा। इससे तो

बन्डू : वह यहीं आकर रहे ··

निर्मला : आप चुप रहिए, लाला। यदि यहीं आकर यह रहने लगे तो उसे भी सुभीता होगा और आपको भी कठिनाई न होगी। सवाल है सिर्फ लाला का। तो उन्हें भेज दीजिए किसी होस्टल मे रहने को···

बन्डू : वाह, वा ! क्या यह भी कोई बात हुई ··

रमेश . (डाँटकर) बड्डू, खामोश बैठे रहो।

बन्डू : *खामोश क्यों बैठूँ ? एक सुन्दर-सा मेरा अपना यह घर । प्रभु रामचन्द्र की तरह मेरा भाई, सीताजी की तरह मेरी भाभी और हनुमानजी जैसे हमारे ये खंडेराव ...*

खंडेराव (चिल्लाकर) बंडू !

रमेश : (चिल्लाकर) बंडू !

बन्डू : *अच्छा, अच्छा । खंडेराव का नाम लाल स्याही से काटे देता हूँ—इन सब के होते हुए मै क्यों बोर्डिङ्ग में जाऊँ ? सगा भाई हूँ मै ! सो वह तो जाए बोर्डिङ्ग में और जाने कहाँ की कौन यह, दो घडी पहिले जिससे आप की कोई पहचान न थी, वह यह यहाँ आकर मेरे स्थान पर कब्जा कर ले ?* (नाटकीय ढग से) *अन्याय ! अन्याय !! साफ-साफ अन्याय !!! अब हम गुलाम नहीं रहे । हम स्वतंत्र हो गये हैं । इस स्वतत्र भारत के नागरिक के नाते मैं आपसे स्पष्ट शब्दो में कह देना चाहता हूँ कि मै बोर्डिङ्ग में नही जाऊँगा —नहीं जाऊँगा—हरगिज नही जाऊँगा ! एन्ड दैट्स दैट !* (अपने इस भाषण के समय बंडू बीच-बीच मे यह देखकर कि उसके एक-एक वाक्य का इन्दु पर क्या प्रभाव पड रहा है, आगे का वाक्य कहता है । और अत मे किसी भडकदार अभिनेता की तरह हाथ को उसी तरह ऊपर उठा हुआ रखकर, बुत की तरह स्तब्ध रहता है । उसके भाषण देते समय सिर्फ इन्दु ही गभीर रहती है ।)

खंडेराव *अब तुम्हारा नाटक काफी हो गया, बंडू । जाओ, अब*

जाकर अपनी जगह पर बैठ जाओ चुपचाप। शायद किसी नाटक-मडली में भरती होने की तैयारी कर रहे हो तुम ?

बन्डू : (प्रकृतिस्थ होकर) यह भी कोशिश मै कर चुका हूँ —उन्होंने मुझे पसंद भी कर लिया था—पर अमेच्योर के नाते काम कराना चाहते थे—तनख्वाह कुछ नहीं —ट्राम का किराया भी नही—कला के लिए समय खर्च करने की मुझे फुरसत न थी—

निर्मला . अब आप चुप भी रहेंगे या नही, लाला। इन्दुमति तुम क्या कहना चाहती हो ? बोलो।

इन्दु : इतना अगर हो जाता तो फिर मुझे और क्या चाहिए ? पाकिट खर्च के लिए भी मुझे कुछ दिनो तक थोडा मिल जाया करे तो—फिर आगे उसकी भी जरूरत नहीं पडेगी, क्योंकि धीरे-धीरे मै भी कुछ लिखने की कोशिश करती रहूँगी और आप के प्रभाव से वह प्रकाशित होता रहेगा तो मुझे भी कुछ मिलता ही रहेगा।

बन्डू और इन्दुमति कुलकर्णी एक प्रसिद्ध लेखिका हो जाएगी।

इन्दु . (डॉटकर) आप चुप बैठिए। (बड्डू झट-से कुर्सी पर बैठ जाता है।) इसीलिए मैंने जेब-खर्च की बात

निर्मला : ठीक है। खाना-कपडे का प्रश्न तो हल हो ही गया हे। बाकी का हम आगे देख लेगे अब चलो, हम तुम्हें अपना घर दिखा दें। चलो।

वन्डू : (कुर्सी से उठ कर) हुर्रे !

इन्दु : चुप बैठो । (वह बैठ जाता है । निर्मला और इन्दु घर में जाती है ।)

खंडेराव : मेरा ख्याल है रमेश, कि तुमने यह एक झंझट ही मोल ले ली है । निमी ने भी इस मामले में अपनी ना-समझी ही दिखाई है ।

रमेश : सुनो खडेराव, यह हमारा पहिला ही प्रयोग है । पुरुष सेक्रेटरी की अपेक्षा स्त्री-सेक्रेटरी अच्छी होती है । और फिर यह हमेशा हमारे घर में ही रहेगी । जिस समय चाहूँगा, लिख सकूँगा । हाँ, सवाल यह जरूर है कि बंडू भी यही रहेगा…

बन्डू : अजी, कहाँ का बन्डू लिए बैठे हैं, दादा ! उसने जैसा रूप आज दिखाया, वैसा पहिले मैंने कभी नही देखा था । मुझे लगता है कि कल से वह मुझसे एक नौकर की तरह काम करायेगी—इसी मेरे अपने घर में—मैं तो कान पकडता हूँ, दादा—चाहे जान चली जाए पर ऐसी लडकी से कदापि विवाह न करूँगा ।

खंडेराव : और प्रेम करोगे या नही ?

बन्डू : प्रेम ? आप इतना भी नहीं समझते, खंडेराव जी ? इसीलिए अभी तक ब्रह्मचारी रहे । एक ही घर में रहकर क्या कभी प्रेम हुआ है ? जिस क्षण उसने यहाँ रहने का निश्चय कर लिया, उसी क्षण प्रेम समाप्त हो गया । और प्रेम समाप्त हुआ इसलिए विवाह भी समाप्त हो गया । राम ! राम ! कैसी यह विडम्बना !

रमेश : *चुप बैठ। सुना खंडेराव, अब मुझे बडा जोश चढ़ा है। अब मै जो लिखूँगा उसकी क्या कद्र होती है, इसी पर सारा भविष्य निर्भर रहेगा। मुझे खुशी इस बात की है कि आरम्भ मे ही निमी और इन्दु दोनो की घनिष्ठता हो गई। अब मै निश्चिन्त हो गया। पर हाँ, तुमसे मै क्या कहना चाहता था ?—छि.! भूल ही गया।*

बन्डू : *हुर्रे !*

[परदा]

दूसरा दृश्य

[पहिले प्रवेश के प्रसग के बाद छः महीने बीत चुके है। इस अवधि में सभी परिस्थिति बदल गयी है। पुराने फर्नीचर की जगह नया फर्नीचर आ गया है। कमरे की सारी साज-सज्जा एकदम बिल्कुल बदली हुई है। दीवार पर लगे पुराने चित्रों के स्थान पर आधुनिक चित्रकला के चित्र लगे है। इस समय बन्डू एक कोच पर बैठा है और सिगरेट के कश खीच रहा है। इसी समय निर्मला प्रवेश करती है।]

निर्मला . *क्या ये अभी तक नही आये ?*

बन्डू : (जरा गुस्से से) *मै नही जानता। आप चाहें तो जाकर खुद देख लीजिए।*

निर्मला : (एक क्षण रुकने के बाद उसकी ओर देखकर) *जरा सीधी तरह से जवाब देते तो क्या कुछ बिगड जाता आपका ?*

वन्दू : जवाब की जरूरत ही क्या है ? दादा अगर यहाँ होते तो आपको दिख ही जाते ।

निर्मला · वे कभी-कभी आ जाते हैं और तुरन्त चले भी जाते हैं । इसलिए मैंने पूछा था । तो इसके लिये आपको इस तरह आपे से बाहर होने की जरूरत नहीं थी । (वह कुछ नही बोलता ।) मैंने जो कहा, वह सुना आपने ?

वन्दू : (कुछ चिडचिडे भाव से एक बार उसकी ओर देखकर) न कोई यहाँ आया और न कोई यहाँ से गया। समझीं ? अब आप जा सकती हैं ।

निर्मला : कहाँ जाऊँ ?

वन्दू . जहाँ आपका जी चाहे । पर यहाँ, मेरे सामने, मत खडी रहिए । आपको देखते ही मेरा दिमाग घूमने लगता है ।

निर्मला : छः महीने में आप इतने बदल गये, वंदू लाला ?

वन्दू : छ. महीने में ? छ. महीने में दाढ़ी कितनी बढ जाती है ? फिर छः महीने में मनुष्य को क्यो नहीं बदलना चाहिए ? छः महीने मे कोई कारण न होते हुए भी दुनिया में युद्ध छिड जाते हैं । छ मिनटों में सुप्त ज्वालामुखी विस्फोटित हो उठते हैं । अणुबम का विस्फोट हो जाता है । फिर यदि मैं बदल गया हूँ तो आपको इतना अचरज क्यो हो रहा है ? अरे भई, मनुष्य में परिवर्तन तो होगा ही । मै किसी जमाने में रेंगता था । फिर हाथ-गाड़ी पकड़कर चलने लगा

था । फिर गाडी छोडकर चलने लगा था । बाद में दौडने लगा था । इसलिये मनुष्य का इस प्रकार बदलते रहना अवश्यंभावी ही है ।

निर्मला . पर इन परिवर्तनों की कोई सीमा होती है । एकदम काला सफेद नहीं हो जाता और सफेद काला नहीं हो जाता ।

बन्डू : कैसे नहीं हो जाता ? यह भी हो जाता है । सफेद लकडी जल जाने से काली हो जाती है···

निर्मला . आप मे ऐसी कौनसी गरमी आ गयी हे ?

बन्डू : परिस्थिति की गरमी आ गयी है । पहिले मैं कमजोर था । आप लोगो पर अवलंबित था । अब मुझ में ताकत आ गयी है । हाथ-गाडी को फेककर, मैं अब अपने पैरो पर खड़ा हो गया हूँ । समझी ?

निर्मला : (तिरस्कार से हँसकर) क्या कहने ? अपने पेरो पर खडे होने की डीग मार रहे हो ! क्या दो पैसे भी कमाने की अक्ल है आपमें ?

बन्डू · बिना कुछ कमाये, अपने व्यक्तित्व को प्रस्थापित करने की अक्ल आ गयी है मुझ में । दादा तो मुझ से कभी कुछ नही कहते । फिर आप क्यो हमेशा मेरे पीछे यूँ पडी रहती है ?

निर्मला : गृहस्थी की यह गाडी जो मुझे खीचनी पडती है !

बन्डू : यह तो पुरानी बात हुई—छः महीने पहिले की ! (हँसता है ।) क्या आप खींच रही हैं गाड़ी ? क्या

कहने ? आप न होतीं, तो शायद यह घर चौपट हो जाता ? कौन खींच रहा है यह गाडी ?

निर्मला : तो आपही बताइए न, कि कौन खींच रहा है ?

बन्डू : आप ही बताइए।

निर्मला : मेरा तो यही ख्याल है कि यह गाडी मैं ही चला रही हूँ। आपको यदि अन्यथा लग रहा है, तो आप ही बताइए कि कौन खींच रहा है ?

बन्डू : दादा के सिवा और कौन खींचेगा ?

निर्मला : वे तो सिर्फ पैसा कमाकर लाते है। सिर्फ पैसा कमाने से ही गृहस्थी की गाडी नही चलती। पैसे को उचित ढङ्ग से खर्च करना होता है। आमदनी के भीतर खर्च करना होता है। जब खर्च करने के बाद पैसा बच जाता है तब फिजूल खर्च न करके उसे बचाकर रखना होता है।

बन्डू : तो यह सब काम क्या आप कर रही है ?

निर्मला : नही तो और कौन कर रहा है ?

बन्डू : कौन कर रहा है इसका आपको खुद पता है। आज यदि वह इस घर में न होती, तो सारी गृहस्थी का दिवाला पिट जाता। दादा तो सिर्फ मुँह से बोलते जाते है। पर लिखती वह है। प्रकाशको से सारे व्यवहार वही करती है। पैसे उसी के पास रहते है। यह सच है कि कर्जदारो को पैसा आप ही देती है। पर कब ? जब पहिले वह आप को देती है। यह तो उसकी सज्जनता है जो वह आप को आपकी माग के

अनुसार पैसे दे देती है—कभी इकार नही करती। मान लो अगर इकार कर दे तो आप कर्जदारो को कहाँ से पैसे लाकर देंगी ?

निर्मला : (एक लम्बी आह खीच कर) आप सच कह रहे है, लाला ! ऐसा ही हो गया है, इसमें शक नही।

बन्डू : ऐसा हो गया है न ? तो फिर चुप बैठिए। मेरे पास आपने शिकायत की, मैने सुन ली। और यदि दादा को यह—

रमेश : (प्रवेश करके) दादा को क्या हो गया ?

(रमेश का स्वभाव भी काफी बदल गया है। उसमे निश्चितता आ गयी है। वह जरा ढीठ हो गया है। पहिले जैसा मुँह नही बनाता।)

बन्डू : कुछ नही दादा। ऐसी बातें तो रोज ही हुआ करती है। भाभी कहती है—मै बदल गया हूँ।

रमेश : वह ठीक कहती है। तुम बेशक बदल गये हो। तुम पहिले जैसे आवारा नही रहे—अब कुछ काम भी कर रहे हो—

बन्डू : आपके लेखों की सारी नकलें मै ही तो करता हूँ।

रमेश : छ: महीने पहिले यह बात कभी तुम्हारे दिमाग में नही आई कि यह काम करूँ। पर अब कर रहे हो— (निर्मला से) ये नकलें करता रहता है न ? (वह गर्दन से हॉ कहती है।) क्या पहिले करता था ? (वह गर्दन से ना कहती है।) फिर अब क्यों कर रहा है वह ?

निर्मला : उनमें फर्क जो हो गया है।

रमेश : कम-से-कम इतना तो तुम्हें जँच गया ?

निर्मला : अभी कुछ समय पहिले उनके साथ मेरी कुछ बातें हो गई थीं वे इसी कारण से हुई थीं। मैंने इनसे कहा था कि इन में फर्क हो गया है

रमेश : याने ? क्या बंडू स्वीकार नहीं करता कि वह बदल गया है ?

निर्मला . यह तो उन्हें मंजूर है कि वे बदल गये हैं। पर मैं उनसे यह पूछना चाह रही थी कि उनके इस तरह बदल जाने का कारण क्या है ?

रमेश : तो क्या तुमने वह पूछा नहीं ?

निर्मला : अब पूछती हूँ।

रमेश : क्यों बंडू, क्या "उत्तर है तुम्हारे पास इसका ?

बन्डू : क्या उन्हें यह स्वीकार है कि आप भी बदल गये हैं ?

निर्मला : बदल तो सभी गये है। मै ही एक हूँ जो जैसी पहिले थी ठीक उसी तरह अब भी हूँ।

बन्डू : पर आपको मंजूर है क्या यह दादा ?

रमेश : हाँ। मुझ मे फर्क हो ही गया है—बहुत ज्यादा फर्क हो गया है। इन छ. महीनों मे मै इतना बदल गया हूँ कि मुझे स्वयं इस पर आश्चर्य होता है कि मुझ में इतना फर्क कैसे हो गया ?

निर्मला : इतना फर्क क्यो हो गया आप में ?

रमेश : बंडू, तुम मे इतना फर्क क्यो हो गया जी ?

बन्डू : जिस कारण से आप बदल गये है, उसी कारण से मै भी बदल गया हूँ ।

रमेश : (निर्मला से) मालूम हो गया तुम्हें ?

निर्मला : पर वह कारण कौनसा है ?

रमेश : वह कारण है यह—(इन्दु प्रवेश करती है उसकी ओर अँगुली दिखाकर) सुन लिया ? यहाँ एक बडी बहस छिड गयी है, इन्दु । (इन्दु भी पहिले की अपेक्षा बहुत बदल गयी है । उसमे एक प्रकार की अधिकार की भावना उत्पन्न हो गयी है । वह यह भूल गयी है कि वह नौकर है । वह सभी पर हुकूमत चलाती है और सभी उसकी हुकूमत के आगे सिर झुकाते है ।)

इन्दु : अभी बहस के लिए वक्त नही । आपका तेरहवा परिच्छेद अधूरा रह गया है । चलिए, उसे इसी समय पूरा करना होगा । उधर प्रेस में मैटर पहुँचने में देर होती है, तो वे लोग मेरी आफत कर देते हैं । और आप यहाँ आराम से बहस करते है !

बन्डू : सुनो इन्दु—

इन्दु : क्या देख नही रहे हो कि मै काम में हूँ ? (रमेश से) चलिए । (वह रमेश को लेकर भीतर जाना ही चाहती है कि इसी समय खंडेराव प्रवेश करते है ।)

खंडेराव : रमेश, चलो—पहले मेरे साथ चलो । हमारे धोंडू भाऊ को एक्सीडेन्ट हो गया है । वे जोर-जोर से रो रहे हैं और तुम्हारे नाम की रट लगाये है । चलो —जल्दी चलो ।

रमेश : ठहरो। कोट पहिनकर अभी आया। (भीतर जाता है।)

इन्दु : आप भी अजीब आदमी हैं, खंडेरावजी! बेमौके कोई वाहियात काम लेकर आ धमकते हैं। क्या आप इतना भी नहीं सोच सकते?

खंडेराव : क्या यह वाहियात काम है? अजी, उस मनुष्य पर से एक पूरा लदा लोकवाहक निकल गया है। वह बेचारा परलोक पहुँचने की तैयारी में है। अंतिम भेंट के लिए अपने मित्र को बुला रहा है। और तुम इसे वाहियात काम कहती हो? (रमेश आता है।) चलो-चलो जल्दी। (खंडेराव को खींचता हुआ लेकर जाता है। इन्दु तटस्थ होकर देखती रहती है। निर्मला मन-ही-मन हँसती है। उसकी ओर इन्दु का ध्यान जाता है।)

इन्दु : (निर्मला को लक्ष्य करके) हँस रही है आप? क्यों हँस रही हैं?

निर्मला : क्यो? हँसना कोई अपराध है क्या?

इन्दु : हँसना नहीं चाहिए ऐसा मैने कहाँ कहा है? परन्तु यहाँ हाथ का काम पूरा होने को रह गया, क्या इसलिए हँस रही हो? मैं ले जा रही थी उन्हें—पर अचानक उन्हें बाहर चल देना पडा। आपको शायद लगा कि मै बेवकूफ बन गई और इसीलिए आप हँस रही है। समझीं? मै दूध-पीती बच्ची नहीं—सब समझती हूँ—खूब समझती हूँ! (उसके बोलते तक निर्मला अधिक जोर-से हँसने लगती है।) अभी तक

हँसे ही जा रही हैं आप ? हः, जब आपको काम की कद्र ही नहीं तो आप से व्यर्थ बातें करने से क्या फायदा ?

निर्मला : (हँसते-हँसते) इतना तो समझती हो न ?

बन्डू : भाभी, यह बात ठीक नहीं। आप मजाक में उड़ा रही हैं। यह मजाक नहीं। आपको यही लगा न, कि यह बेवकूफ बन गई ?

निर्मला : पर तुम दोनों ने यह क्यों सोचा कि मुझे यह लगा कि यह बेवकूफ बन गयी ?

इन्दु : (बन्डू से) सुन लो ? कह रही है—'तुम दोनों' को ? क्या आप यह प्रस्थापित करना चाह रही है कि 'हम दोनों' की हमेशा एक राय रहती है ? क्यों यह आरोप लगा रही हैं हम पर ?

निर्मला : तुम दोनो पहिले से ही एक दूसरे को अच्छी तरह से जानते हो। उस वक्त तुम दोनों एक दूसरे से विवाह कर लेने की बातें भी कर रहे थे। बताओ, यह सच है न ? फिर यदि मैंने तुम दोनो को कह दिया तो तुम्हें यह क्यों लगना चाहिए कि मैंने तुम पर कोई आरोप किया ?

इन्दु : हर बात को गलत ढंग से सोचने की आदत ही पड़ गई है आजकल आप की। मैंने तो सहज कह दिया था। पर आपने गलत समझ कर व्यर्थ एक तूफान खड़ा कर दिया। पद-पद पर यही हो रहा है। इसलिए काम में मेरा मन नहीं लग रहा है। समय पर यदि काम पूरे न हों तो प्रकाशक मुझे दोष देने

लगते है। एक तो पहिले से ही ये प्रकाशक रुपया देना नही चाहते और जब ऐसा मौका पा जाते हैं तो उन्हें रुपया न देने का एक अच्छा बहाना मिल जाता है। अगर समय पर रुपये न आए तो यह गृहस्थी कैसे चलेगी ?

निर्मला : इस गृहस्थी को चलाने की चिन्ता तुम्हें क्यों ? मैं जो हूँ।

इन्दु : (तिरस्कार से हँसकर) क्या कहने ? बड़ी आई कहने वाली कि मैं जो हूँ ! छः महीने पहिले भी तो आप थी ? उस समय आ रहे थे क्या रुपये इस तरह ? उस वक्त क्यो इतनी खींचातान हो रही थी ? और अब क्यों नही होती ?

बन्डू : अब बोलिए, भाभी। दीजिए इसका उत्तर ! (निर्मला स्तब्ध) अब क्या बोल सकती हैं आप ?

इन्दु : इसीलिए बोलने से पहिले मनुष्य को अच्छी तरह सोच-समझकर बोलना चाहिए। समझीं ?

निर्मला : (झल्लाकर) मुझे आँखे दिखा रही हो ? जानती हो, मैं कौन हूँ ? मै इस घर की स्वामिनी हूँ। तुम कौन हो ?

इन्दु : मैं कोई भी रहूँ। पर इतना सच है कि अगर मै न रहूँ तो आपको पेट-भर भोजन मिलना भी मुश्किल से नसीब होगा।

बन्डू : अब तो घुसा आपके दिमाग मे भाभी जी ? छः महीने पहिले के दिनों को याद कीजिए। और आज का

दिन देखिए। कितने सुख-चैन में हैं आप ? यह सब किसके कारण है ? दादा इसे महसूस करते है या नहीं यह तो मै नही जानता। पर आप घर में रहती है। सब देख रही है। और फिर भी आपको यदि यह महसूस नहीं होता कि इन्दु के कारण ही आज आप चैन कर रही हैं तो इससे अधिक अहसान-फ़रामोशी दुनिया में और कौनसी हो सकती है ? (उसकी बातों से निर्मला भडक उठती है। उसे रोश आने लगता है। वह उत्तर देने को मुँह खोलती है। पर मुँह से शब्द बाहर नही फूटता।)

बन्टू : अब क्यों घिग्घी बँध गयी ?

इन्दु : तुम क्यों बोल रहे हो ? तुम्हारे दादा को भी मै जानती हूँ। उनके हिसाब मे भला और बुरा दोनों एक बराबर है। काम चल रहा है न ? रुपये आ रहे है न ? खर्च मे कहीं कमी तो नहीं पड रही न ? बस, वे सिर्फ इतना ही देखते है। उन्हें यह सोचने की क्या जरूरत कि ये रुपये कहाँ से आते है, कौन उन्हें वसूल करके लाता है, किसकी कार्य-क्षमता के कारण यह सब हो रहा है ? जब खुद तुम्हारे दादा ही इस बात को महसूस नहीं करते तो व्यर्थ इन्हें क्यों दोष दें ?

निर्मला : (धीरे-धीरे क्रोध कम हो जाने पर) क्षमा कर दो मुझे, इन्दु। मुझ से गलती हो गई। मुझे वह नहीं कहना चाहिए था। (उसके मुँह के शब्द उसकी मुद्रा के भाव से मेल नही खाते।)

बन्झू : सुनो इन्दु ! कोई महसूस करे या न करे। पर तुम हम लोगों पर जो उपकार कर रही हो उसे मै पूरी तरह महसूस करता हूँ।

इन्दु : तुम्हारे महसूस करने से क्या फायदा ? तुम कोई इस घर के मालिक नही। तुम मुझे तनख्वाह नहीं देते और न तुमने मुझे यह नौकरी दी है। मैं महसूस करती हूँ कि मै इस घर में नौकर हूँ। परन्तु इस घर के मालिक मुझे नौकर नहीं मानते, इसीलिए अभी तक निभ रही हूँ…

निर्मला (शान्ति से) क्यों इतनी परेशान हो रही हो ? मुझे सब मालूम है। सब कुछ जानते हुए भी अभी तक मैं चुपचाप बरदाश्त करती आई, यही मैने भूल की। उसी भूल का फल मै भोग रही हूँ। (एकदम भीतर चल देती है।)

(उसके भीतर चल देने के बाद थोडी देर तक इन्दु गभीर बनी रहती है। पर कुछ समय के बाद ही वह खिल-खिलाकर हँस पडती है और हँसती रहती है। हँसते-हँसते वह बन्झू के पास जाती है और उससे सटकर बैठ जाती है।)

इन्दु : (बझू के कन्धे पर हाथ रखकर) इसी तरह होमियोपैथी की गोलियाँ खिला-खिलाकर मै इसे तंग करती रहूँगी। जब तक यह यहाँ से चली नहीं जाती तब तक हमारा रास्ता साफ नही होगा। यही एक अडचन हो बैठी है हमारे बीच। पर आज मुझे पक्का विश्वास हो गया, कि जहाँ मैने उसे और थोडा चिढाया कि—

(आँखें मिचकाकर गर्दन के इशारे से 'वह चली जाएगी' का भाव सूचित करती है ।)

बन्डू : *हाँ, ऐसी बात है तो जरूर । पर मुझे अभी तक विश्वास नहीं हो रहा है । दादा किसकी तरफदारी करते हैं इसका मुझे शक है । पर मैं कहता हूँ, अब और अधिक राह देखते रहने की अपेक्षा हम विवाह ही क्यों न कर लें ? विवाह हो जाने पर हम अधिकार से इस घर में रह सकेंगे ।*

इन्दु · *विवाह ही की क्या जरूरत है ? मान लो कल वे लोग हमें घर से निकाल दें, तो तुम्हें भी कोई सहारा नहीं और मुझे भी नहीं । जो अभी चल रहा है वह क्या बुरा है ? यह कोई आवश्यक नहीं कि विवाह होना ही चाहिए । विवाह न होने का संकोच तो मुझे होना चाहिए । विवाह करने का तकाजा मुझे करना चाहिए । है न ? पर इस विषय में जब मैं ही चुप हूँ, तो तुम्हें इतनी जल्दी क्यों पड़ी है ? इस घर में दो दम्पति सुख से रह ही रहे हैं न ? यह तो सच है न ?*

बन्डू : *जब तुम्हीं यह कहती हो तो मैं क्या कह सकता हूँ ? पर अभी तक मुझे दादा पर विश्वास नहीं हो रहा है ।*

इन्दु : *ठहरो । आज ही मैं इसका फैसला कराये देती हूँ । तुम्हें न हो, पर तुम्हारे दादा पर मुझे विश्वास है—*

बन्डू *सुनो इन्दु ! नादानी करके कोई दूसरी आफत गले में न बाँध लेना—*(भीतर से रमेश की आवाज सुनाई पड़ती है—'तो अभी जाओ । मौका लगा तो फिर आ

जाना थोड़ी देर के बाद।') दादा आगए शायद ? अब—

(इन्दु मेज के पास जाकर लिखने लगती है। चंडू जल्दी-जल्दी एक किताब उठाकर उसे पढने का स्वॉग भरता है। रमेश प्रवेश करता है।)

रमेश : आखिर चल बसा बेचारा। मेरे पहुँचने से पहिले ही उसके प्राण-पखेरू उड चुके थे। अं! यह कहाँ चली गयी ?

चन्डू : भाभी भीतर है। क्या बुला लाऊँ ?

रमेश : नहीं। जब कोई ऐसी अचानक दुखद घटना देखने को मिल जाती है तो मन पर बड़ा प्रभाव पडता है—है न इन्दु ?

इन्दु : (चौक कर पीछे देखती है और उठकर खड़ी हो जाती है।) क्या हुआ ?

रमेश : चल बसा वह। मेरे जाने से पहिले ही सारा खेल खत्म हो चुका था। तुम क्या लिख रही हो ?

इन्दु : मैं लिख रही थी—कैसे बताऊँ—आज एक विज्ञापन देखा—उसके लिए लिख रही थी।

रमेश : कैसा विज्ञापन ? काहे का ?

इन्दु : वान्टेड का। किसी महाशय को टाईपिस्ट की जरूरत है।

रमेश : याने ? उस विज्ञापन के लिए तुम क्यो लिख रही हो ?

इन्दु : पेट भरने की जरूरत जो मुझे है। इसके लिए मुझे कहीं-न-कही कोई नौकरी तो करनी ही होगी।

रमेश : याने ? तुम तो यहाँ नौकरी कर रही हो न ? नौकरी काहे की—परिवार के एक व्यक्ति की तरह ही तुम रह रही हो यहाँ।

इन्दु : आज तक मैने कुछ कहा नहीं। पर अब कह देना चाहती हूँ। अब से यहाँ रहना मेरे लिए असभव हो गया है। काम मेरी रुचि का था, इसीलिए आज तक सब कुछ बरदाश्त करती रही—

रमेश : क्या बरदाश्त करती रही ?

इन्दु : यहाँ की मालकिन के ताने। (ठहरकर) कैसे कहूँ ? इन्हीं से पूछ लीजिए…

रमेश : किससे ? बडू से ? क्यों जी बंडू, क्या हुआ ?

बन्डू : वह सब आप इसी से पूछिए। मै वह नही कह सकूँगा।

रमेश : बिल्कुल साफ-साफ कह दो मुझ से—सुना इन्दु ? इधर देखो, मेरी नजर से नजर मिलाओ और साफ-साफ कह डालो, क्या हुआ ?

इन्दु : मुझ पर आरोप लगाया जा रहा है—बहुत गदा आरोप लगाया जा रहा है।

रमेश : कौन लगा रहा है ?

इन्दु : यहाँ जो लोग हाजिर है, उन्हें छोडकर, घर मे जो चौथा व्यक्ति है वह।

रमेश : मेरी पत्नी ?

अच्छी तरह से कर रही हो और जब तक इसी तरह ठीक काम करती रहोगी तब तक मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगा ।

इन्दु : मुझे क्षमा कीजिए । अब से यहाँ रहना मेरे लिए असंभव है ।

निर्मला : मैने ऐसा क्या कर दिया है जिससे तुम इतनी नाराज हो गयी हो ?

रमेश : क्या किया है, यह तुम को खुद मालूम है ! ऐसी घिनौनी बातें मै अपने मुँह से नहीं निकालना चाहता ।

निर्मला : कौनसी घिनौनी बात है, जरा मालूम भी तो हो ?

रमेश : अब मुझसे कुछ मत कहलवाओ । (क्रोध से) सुनो निर्मला, तुम्हारी अपेक्षा मुझे इन्दु की अधिक जरूरत है । (बंडू जाकर उसके नजदीक खडा हो जाता है ।) है न बंडू ? तुम देख रहे हो । इतने थोडे समय मे उस ने मेरे काम कितनी अच्छी तरह से किये हैं । प्रकाशको से मेरे सारे व्यवहार कितने सीधे और साफ कर दिये है कि अब मैं इसे छोड़ ही नही सकता । उसके सहवास से मेरे लेखन में एक प्रकार का ओज आ गया है । सारे पाठक भी इसे जानने लगे है । है न बन्डू ?—सुनो इन्दु, अब तुम इस घर की कोई एक हो—तुम नौकर नहीं रही—मेरी सहकार्या हो । यदि यह सहकारिता बिगड गयी तो मेरा लेखन ही बिगड़ जाएगा । अब बताओ, तुम्हारी क्या कठिनाई है ?

इन्दु : मुझे जो निवेदन करना था, कर चुकी। मुझ से ऐसे आरोप बरदाश्त नहीं होंगे। ऐसे आरोप करनेवाला व्यक्ति कोई भी हो उसके आस-पास रहना भी मुझे दुःसह होगा। मुझे क्षमा कर दें। मुझे जाने दीजिए।

(ये बाते हो रही है। उस समय निर्मला सन्न होकर उन्हे सुन रही है। उसे एक अनपेक्षित धक्का लगता है और वह हक्का-बक्का हो जाती है। उस धक्के को सहन करना उसके लिए असहनीय हो गया है।)

रमेश : सुन लिया निर्मला ! सुन लिया तुमने ? बोलो, अब तुम क्या कहना चाहती हो ? (निर्मला एक शब्द भी नहीं बोलती और घर मे चली जाती है।)

इन्दु . (सिसकियो के बीच रमेश के चरणो पर सिर रख देती है और फिर उठ कर खडी हो जाती है।) मुझे क्षमा कीजिए—क्षमा कीजिए। मुझे जाने ही दीजिए। मुझ पर अकारण यह आरोप न लगना चाहिए कि एक सुख-भरी गृहस्थी को मैंने धूल में मिला दिया। मुझे जाने ही दीजिए—मै आपके पैर पडती हूँ—मुझे जाने दीजिए—

रमेश : नहीं। अगर कोई जाएगा ही, तो वह जाएगा—तुम नहीं। यह तुम जानती हो कि उसका आरोप बिल्कुल झूठा है और मै तो जानता ही हूँ। इतना घिनोना आरोप लगाने के बाद उसका इस घर में न रहना ही अच्छा ! मै निर्मल हूँ। ईश्वर साक्षी है कि मैं निर्मल हूँ। वह इतने बरसों से मेरे साथ रह

रहा है। फिर भी मुझ पर ऐसा गंदा आरोप लगाता है इस पर मुझे आश्चर्य होता है। नहीं—अब इससे आगे, उसे इस घर में नहीं रहना चाहिए।

बन्डू : दादा, जरा शान्त होकर सोचिए। लोग क्या कहेंगे ?

रमेश : जब तक मेरे विचार और आचार शुद्ध हैं तब तक लोग क्या कहेंगे, इसकी मुझे परवाह नहीं। लेखक के नाते मुझे अपना नाम कायम रखना होगा और उसके लिए मुझे इसकी जरूरत है। बिना इन्दु के मेरा लेखन तेजस्वी नहीं होगा। (हाथ में सूटकेस लिये निर्मला जाती है।) क्या सचमुच जा रही हो तुम ?

(सूटकेस नीचे रखकर वह रमेश के चरणों में सिर रख देती है और उठकर एकदम सूटकेस उठाकर बाहर जाने लगती है। उसके पीछे-पीछे रमेश दौड़ पड़ता है।) ठहरो निर्मला, ठहरो! (वह बोलते-बोलते बाहर चला जाता है।)

बन्डू : (दरवाजे के पास जाता है। झाँककर बाहर देखता है और लौटकर) चली गयी वह! दादा दौड़े जा रहे हैं उसके पीछे-पीछे। लाओ, मिलाओ हाथ!

इन्दु : (हाथ मिलाकर) देखा ? कहते हैं कि सच्चे की दुनिया नहीं सो झूठ नहीं। भोले बेचारे तुम्हारे दादा—(कहकहा लगाकर हँसती है।)

(रमेश वापिस आता है। उसके साथ खंडेराव है।)

खंडेराव : क्या हो गया ? निर्मला कहाँ चली गयी ?—(रमेश चुप है।) बोलते क्यों नहीं ?

रमेश : इन्दु, चलो। लिखने का सामान उठाओ। कहाँ तक हो गया था कल का परिच्छेद ?

इन्दु : ठहरिए ! अभी देख कर बताती हूँ।

(वह मेज पर रखे कागजों को पलटने लगती है।)

[पटाक्षेप]